इकाई 1 हठयोग का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 हठयोग : अर्थ एवं स्वरूप
1.4 हठयोग : परिभाषा
1.5 हठयोग के उद्देश्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भग्रन्थ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

योग आरंभ से ही अत्यन्त व्यापक विषय रहा है। कालान्तर में तो इसकी व्यापकता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गई आज वर्तमान समय में तो योग अत्यन्त व्यापक एवं बहुप्रचलित शस्य हो गया है। आज बच्चे के मुँह पर योग का नाम है। इसका प्रयोग इतने अलग–अलग अर्थों में होने लगा है कि योग की कोई एक सर्वमान्य एवं पूर्ण परिभाषा दे पाना कठिन है। यदि हम वर्तमान परिवेश की बात ना करें तो भी प्राचीनकाल से ही योग साधना के अनेक भेद किये जाते है! यथा ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, मंत्रयोग, लययोग, ध्यानयोग, हठयोग इत्यादि।

प्रस्तुत इकाई में योग विद्या के प्रमुख अंग हठयोग के स्वरूप एवं उद्देश्य के विषय में वर्णन किया जायेगा।

अब विद्यार्थियों के मन में यह जानने की जिज्ञासा हो रही होगी कि –

- हठयोग क्या है ? किस ऋषि द्वारा इसका प्रतिपादन किया गया ?
- हठयोग, योग की अन्य विद्याओं से किस प्रकार भिन्न है ?
- हठयोग की साधना किस प्रकार से की जाती है?
- किन–किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हठयोग विद्या का प्रणयन किया गया ? इत्यादि।
- विश्वास है अगले पृष्ठों का सम्यक अध्ययन करने के बाद आप इन प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जायेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- हठयोग के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हठयोग की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- हठयोग की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- हठयोग के उद्देश्यों का विवेचन कर सकेंगे।

1.3 हठयोग : अर्थ एवं स्वरूप

योग विद्या की विविध परम्पराओं में ''हठयोग'' का महत्वपूर्ण स्थान हैं। हठयोग विद्या को तंत्र विद्या के अत्यधिक निकट माना जाता है अर्थात् – ऐसा मत है कि तंत्र से ही हठयोग की उत्पत्ति हुई। संभवतः ऐसा मानने के पीछे यह कारण रहा होगा कि भगवान् आदिनाथ (शिव) ही इन दोनों विद्याओं (तंत्र एवं हठविद्या) के आदिप्रणेता थे। उन्हीं से इनका आवीर्भाव माना जाता है।

एक प्रचलित मान्यता के अनुसार 14वीं–15वीं सदी में भारत में तंत्र विद्या अपने चरम उत्कर्ष पर थी। अत्यधिक प्रचलित होने के कारण लोगों ने अत्यन्त गूढ इस विद्या का दुरूपयोग करना प्रारंभ कर दिया। परिणामतः समाज में सुख–समृद्धि के स्थान पर त्राहि–त्राहि मच गई। तब उस समय में नादसम्प्रदाय के आचार्यी मवचेन्द्रनाथ एवं गोराक्षनाथ ने इसके (हठविद्या) विकृत स्वरूप को परिष्कृत कर उसे जनसामान्य के लिए सुलभ सुगम ''हठयोग विद्या'' के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जिसे राजयोग के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

आचार्य जितेन्द्र कुमार पाठक कृत योग व्यायाम के अनुसार –

''सिद्धाचार्यी ने जिस काय साधन पर विशेष बल दिया था उसी को नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने और अधिक विकसित करके उसे चरम विकास तक पहुॅचाया। यही काय साधन–प्रधान योग पद्धति हठयोग के नाम से प्रसिद्ध हुई।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत नाथ सम्प्रदाय के अनुसार – ''हठयोग का सबसे प्राचीन उल्लेख गुहच समाज में आता है, वहॉ बोधि प्राप्ति की विधि बता देने के बाद आचार्य ने कहा कि यदि ऐसा करने पर भी बोधि प्राप्त न हो आचार्य : ज्ञान न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए।''

अतः यह स्पष्ट है कि हठयोग के आदि प्रेणता भगवान् शिव है। यह विद्या शिव–पार्वती संवाद के रूप में है। जिसे बाद में नाथ सम्प्रदाय के आचार्यों में जनसामान्य में प्रचलित किया।

''श्री आदिनाथय नमोऽस्तु,
तस्मै पेनोपदिष्टा हठयोग विद्या।
विभ्राजते प्रोन्नत राजयोग
मारोदुमिच्छोरधिरो हिणीव।।''

– (हठप्रदीपिका/1/1)

अर्थात् उन सर्वशक्तिमान् अदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोग विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने चाले अभ्यासियों के लिए सीढ़ी के समान है।''

हठयोग : अर्थ एवं स्वरूप

हठयौगिक ग्रन्थों में हठयोग को ''प्राण निरोध प्रधान साधना पद्धति'' के रूप में अंगीकार किया गया है और तद्नुरूप अनेक प्रकार से हठयोग शब्द की व्युत्पत्ति मानी गयी है। एक मत के अनुसार 'ह' सूर्य का प्रतीक है और 'ठ' चंद्र का। अतः सूर्य और चंद्र का योग ही 'हठयोग' है। ये सूर्य और चंद्र वस्तुतः मानव शरीर में विद्यमान नाड़ियों के भी प्रतीक हैं, जिन्हें क्रमशः पिंगला या सूर्य नाड़ी और इड़ा या चंद्र नाड़ी कहा जाता है। परस्पर दो विपरीत धर्म वाले तत्वों के संकेत के रूप में भी 'ह' और 'ठ' का प्रयोग देखने को मिलता

है। यथा – प्राण और अपान, पित्त और कफ, ग्रीष्म और शीत, दिन और रात, शिव और शक्ति आदि।

मानव के अन्दर दो प्रमुख शक्तियॉ सदैव कार्य करती है ये हैं –

1) मनस् या चित् शक्ति
2) प्राणशक्ति

जिनके प्रतीक क्रमशः 'सूर्य' और 'चंद्र' है। 'ह' और 'ठ' का प्रयोग अन्य दूसरे अर्थों में भी किया जाता है। यथा –

	ह	ठ
1)	सूर्य	चंद्र
2)	पिंगला नाड़ी	इड़ा नाड़ी
3)	ग्रीष्म	शीत
4)	पित्त	कफ
5)	शिव	शक्ति
6)	दिन	रात
7)	रजस्	तमस

हठयोग की एक व्याख्या के अनुसार हकार का अर्थ प्राण वायु तथा ठकार का अर्थ अपान वायु हैं। अतः प्राणायाम के अभ्यास से प्राणायाम का संयोग या निरोध ही हठयोग हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भिन्न–भिन्न विद्वानों ने हठयोग कि व्याख्या भिन्न–भिन्न प्रकार से की है। वस्तुतः इड़ा–पिंगला में प्राण का संतुलन होने पर सुखम्ना में प्राण का प्रवाह होना तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से षट्चक्रों का क्रमशः भेदन करते हुए साधक का समाधिस्थ हो जाना, आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही हठयोग है।

1.4 हठयोग : परिभाषा

विभिन्न ग्रन्थों में हठयोग को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है, जिसका विवेचन निम्नानुसार है

''हकारः कथितः सूर्य
ठकांरचंद्र उच्यते।
सूर्य चंद्रमसोर्योगात
हठयोग निगद्यते।।''

– (सिद्ध सिद्धान्त पद्धति)

अर्थात् ''हकार से सूर्य स्वर और ठकार से चंद्र स्पर को कहा गया है। सूर्य एवं चंद्र स्वर के योग को ही हठयोग कहते हैं।''

''हकारेण तु सूर्यः स्यात्
ठकारेणोन्दुअच्यते।
सूर्यचंद्रमसोरैण्यं
हठ इत्यभिधीयते।।''

– (योग शिखोपनिषद्)

अर्थात् ''हकार से आशय सूर्य स्वर से है और ठकार का अभिप्राय चंद्र स्वर से है। सूर्य एवं चंद्र के एक्य को हठयोग कहा जाता है।

हकार का अर्थ दॉये स्वर, पिंगला नाड़ी अथवा यमुना तथा ठकार का अर्थ बॉये स्वर, इड़ा नाड़ी गंगा लिया जाता है। अग्नि स्वर, सुषुम्ना स्वर। जरास्वती स्वर चलने लगता है, परिणामस्वरूप ब्रह्मनाड़ी के निचले सिरे के पास कुंडलिनी शक्ति सुप्तावस्था में विद्यमान रहती है। साधक द्वारा नियमित प्राणायाम का अभ्यास करने पर प्राणाहात से लुप्त कुंडलिनी फुफंकार मारती हुई जाग जाती है तथा ब्रह्मनाड़ी में गमन करती है। जिससे साधक में अनेक विभूतियों का जागरण होता है और वह आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह प्रक्रिया इस योग पद्धति का मूलाधार है। अतः इसे हठयोग के नाम से अभिहित किया गया है।

हठयोग प्रदीपिका के टीकाकार ब्रह्मानंदजी के अनुसार – ''हकार से तात्पर्य सूर्य अर्थात् प्राणवायु से है और ठकार से आशय चंद्र अर्थात् अपान वायु से है। इन दोनों का प्राणायाम द्वारा निरोध करना ही हठयोग है।''

''उद्घाटयेत् कपातं ह।
यथा कुञ्चिकाया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी
मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।''

– (हठप्रदीपिका /3/101)

अर्थात् जिस प्रकार चाबी से हठता किवार खोलते हैं, उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी द्वारा (हठात्) मोक्ष द्वार का भेदन करते है अथवा हठात् मोक्षद्वार को उद्घाटित करने वाली साधना पद्धति का नाम ही हठयोग है।

''प्राणवायु मुख्यरूप से कुछ दिनों तक एक रन्ध्र से प्रवाहित होती है और कुछ दिनों दूसरे से। दोनों रन्ध्रों से प्रवाहित वायु मन की चंचलता का कारक है। अतः कुशक द्वारा वायु प्रवाह को रोककर सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही 'ह' और 'ठ' का योग हे। तभी उच्च अवस्था बनती है और राजयोग की प्रवृत्ति होती है। (रामहर्ष सिंह : स्वास्थ्यवृत्त विज्ञान, P. 2007, 297)

प्रश्न खण्ड (अ) खण्ड एवं (ब) को मिलाए –

(खण्ड अ)	**(खण्ड ब)**
राजयोग	चन्द्र, इड़ा, शीत
हकार	महर्षि पतंजलि
हठयोग	सूर्य, पिंगला, ग्रीष्म
ठकार	भगवान् आदिनाथ

1.5 हठयोग के उद्देश्य

हठयोग के अर्थ एवं स्वरूप को जानने के बाद मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि आखिर किस प्रयोजन की प्रर्ति हेतु हठयोग विद्या का प्रतिपादन किया गया ? अर्थात् हठयोग के उद्देश्य क्या है ? प्रस्तुत पृष्ठों में इसी विषय पर सविस्तार प्रकाश डाला जा रहा है।

हठयोग को राजयोग का अभिन्न अंग माना गया है। अथवा यदि यह कहा जाये कि हठयोग, राजयोग का पूर्वाभ्यास है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसी का उल्लेख करते

हुए योगीन्द्र स्वात्माराम सूरी ने अपनी अमूल्य कृति हठप्रदीपिका के ''आसन विधि कथन'' नामक प्रथम उपदेश के 67वें श्लोक में कहा है –

''पीठानि कुम्भकाश्चित्रा।
स्वार्ण्यपि हठाश्यासे
राजयोग फलावधि।।''

– (हठप्रदीपिका /1/67)

अर्थात् 'विविध आसन, विविध कुंभक तथा विविध उत्कृष्ट मुद्राए ये सब हठयोग के अभ्यास राजयोग में सफल होने तक करने चाहिए।

वस्तुतः हठयोग एवं राजयोग मिलकर ही पूर्णयोग का निर्माण करते हैं। यद्यपि राजयोग का चरमलक्ष्य चित्त की समस्त वृत्तियों का पूर्णतः निरोध करना है तथापि पहले स्वस्थ शरीर से ही प्रारंभ की जाती है, तत्पश्चात् क्रमशः उत्तरोत्कर प्रगति होती है। हठयोग को कायासाधन – प्रधान पद्धति माना जाता है अर्थात् इसका प्रभाव प्रथम स्थूल शरीर पर पड़ता है, तदनन्तर क्रमशः सूक्ष्म एंव कारण शरीर पर। अतः हठयोग को राजयोग के शिखर पर आकढ़ होने के सोपान के रूप में स्वीकार किया गया है। हठ यौगिक ग्रन्थों में षट्कर्म आसन, मुद्रा, प्राणायाम इत्यादि का तब तक अभ्यास करने का निर्देश दिया गया है, जब तक कि हठयोग का एक प्रमुख उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है। शास्त्रों में हठयोग तथा योग की अन्य विधाओं को गोपनीय रखने के निर्देश दिये गये हैं ताकि सुपात्र जिज्ञासु साधक ही इसका अभ्यास कर सकें।

योगिराज स्वात्माराम सूरी जी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है –

''हठयोग परं गोप्या,
योगिनां सिद्धिमिच्छताम्।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता
निर्वीर्यातु प्रकाशित।।''

– (हठप्रदीपिका/1/11)

अर्थात् ''योग में सिद्धि की इच्छा रखने वाले साधकों को यह हठविद्या नितान्त गुप्त रखनी चाहिए। गुप्त रहने पर यह शक्तिशालिनी होती है तथा प्रकट करने से यह शक्तिहीन हो जाती है।''

वस्तुतः जिस समय हठविद्या का प्रतिपादन किया गया था, उस समय यह सामान्य जन की पहुॅच से बाहर थी। उस समय योग साधना को मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली साधना के रूप में ही जाना–समझा जाता था, किन्तु वर्तमान में परिस्थितियॉ बदल गई है। आमजन के बीच योग अत्यन्त लोकप्रिय होता जा रहा है। लोग इसकी महत्ता को समझ गये है और हठयोग के अभ्यास (षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि) तो विशेष रूप से लोगों द्वारा किये जाते है। आज योग का चिकित्सीय स्वरूप उभर कर हमारे सामने आ रहा है, जिसमें अनेक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक रोगों के निदान में योग की अनेक तकनीकों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हठयोग के उद्देश्यों का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. राजयोग की प्राप्ति
2. समग्र स्वास्थ संवर्धन
3. आरोग्य की प्राप्ति
4. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

5. प्रसुप्त शक्तियों का जागरण
6. आत्म परिष्कार

1.राजयोग की प्राप्ति – हठविद्या का सर्वप्रथम प्रयोजन राजयोग की प्राप्ति है। हठयोग के अभ्यासों का तब तक श्रद्धापूर्वक किया जाता है, जब तक कि राजयोग में सफलता प्राप्त न हो जाये।

2. स्वास्थ्य का परिरक्षण – आयुर्वेद की भॉति ही हठयोग का भी एक प्रमुख उद्देश्य जो व्यक्ति स्वस्थ है, उसके स्वास्थ्य का और अधिक संवर्धन, संरक्षण करना है। विभिन्न हठयौगिक अभ्यासों जैसे षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभॉति), आसन, प्राणायाम इत्यादि से शरीर की शुद्धि होकर दृढ़ता की प्राप्ति होती है तथा मानसिक तनाव एवं भावनात्मक विक्षोभ दूर होकर आन्तरिक शांति की प्राप्ति होती है। परिणामस्वरूप शरीर में समुचित प्राणशक्ति का संचार होता है। सभी समुचित प्राणशक्ति का संचार होता है। सभी अंग–प्रत्यंग सुचारू रूप से कार्य करते है और अन्ततः समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

3. आरोग्य की प्राप्ति – रोगों से मुक्ति प्रदान करने में भी हठयोग के अभ्यास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रहे है। वर्तमान यांत्रिक एवं भौतिकवादी जीवन में हठयोग का चिकित्सकीय स्वरूप ही जनसामान्य के बीच अधिक लोकप्रिय है। विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों जैसे कि कब्ज, मधुमेह, मोटापा, माइग्रेन, अस्थमा, अम्लपित्त, संधिपात इत्यादि में तथा साथ ही मनोरोगों (तनाव, चिन्ता, अवसाद इत्यादि) में भी शुद्धि क्रिया, आसन, मुद्रा प्राणायाम आदि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

नेति क्रिया कान, नाक एवं गले से सम्बद्ध रोगों को दूर करने में अत्यन्त प्रभावशाली है। इसी प्रकार मत्स्येन्द्रासन का प्रभाव विशेष रूप से पाचन संस्थान पर होने के कारण यह उदर विकारों के शमन में लाभदायक है। हठप्रदीपिका में इसके महत्व को बताते हुए कहा भी गया है –

''मस्त्येन्द्रपीठं जठरं प्रदीप्तिं,
प्रचण्डकग्मण्डल खण्डनास्त्रम्।
अभ्यासतः कुण्डलिनी प्रबोधं,
चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्।।''

– (हठप्रदीपिका/1/27)

अर्थात् ''मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह रोगों को नष्ट करने में अस्त्र के समान है। इससे कुण्डलिनी जागृत होती है तथा चन्द्रमंडल स्थिर होता है।

आसन के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हुए योगीन्द्र स्वात्मारामजी कहते है –

''कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं।
चाड्.गलाघवम।।''

– (हठप्रदीपिका/1/17)

अर्थात् ''आसन (शारीरिक एवं मानसिक) स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव लाता है।''

षटकर्मों के नियमित अभ्यास से अनेक रोग दूर होते हैं। कहा भी गया है –

''कासश्वासप्लीह कुष्टं कफरोगाश्च विंषतिः।

धौतिकर्मप्रभावेन प्रयान्त्येव न संशयः।।''

– (हठप्रदीपिका/2/25)

अर्थात् ''धौति क्रिया के फलस्वरूप खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अन्य बीसों प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।''

महर्षि घरेण्ड ने भी धौति की महत्ता को इंगित करते हुए कहा है –

''वातसारं परं गोप्यं
देहं निर्मलकारकम्।
सर्वरोगक्षय करं,
देहानलविवर्द्धकम्।।''

– (घेरण्ड संहिता/1/16)

अर्थात् ''वातसार अत्यन्त गुप्त क्रिया है। यह शरीर में निर्मलता लाने का कारण है। सभी रोगों को नष्ट करती है। जठराग्नि को तीव्र बनाती है।''

इसी प्रकार ''जलवस्ति'' के लाभों का वर्णन करते हुए घेरण्ड संहिता में कहा गया है –

'प्रमेहं च उदावर्त,
क्रूरवायुं निवारयेत्।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च,
का मंदेवसमो भवेत्।।''

– (घेरण्ड संहिता/1/47)

अर्थात् ''यह जल वस्ति कर्म प्रमेह, उदावर्त क्रूर वायु का निवारण कर शरीर को कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।''

अतः स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में हठयोग के अभ्यासों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। इस क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधान कार्यों ने भी इस बात को सिद्ध कर दिया है।

1. **व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास –** हठयोग का एक अन्य उद्देश्य साधक के व्यक्तित्व का समग्र विकास है अर्थात् न केवल शरीर को वरन् चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार को परिष्कृत बनाना है। जैसे–जैसे इन अभ्यासों को लम्बे समय तक नियमित रूप से पूर्ण श्रद्धा भाव से किया जाता है तो साधक के आन्तरिक एंव बाह्य स्तर में अनेक परिवर्तन लक्षित होने लगते हैं।

   ''हठसिद्धि के लक्षण'' के नाम से अभिहित किया गया है। मुख्यमण्डल पर चमक, नेत्रों में तेज स्विता, वाणी में मधुरता, आचरण में पवित्रता, व्यवहार में सादगी व सौम्यता तथा शरीर में हल्कापन इत्यादि गुणों का समावेश होने लगता है, जो उसके व्यक्तित्व का चहुँमुखी नियोजित विकास करते हैं। हठप्रदीपिका में इसी को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

   ''वायुः कृशत्वं बदने प्रसन्नता,
   नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
   अरोग्यता बिन्दुजयोडग्निदीपनम्।
   नाड़ीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम्।।''

   – (हठप्रदीपिका/2/78)

अर्थात् ''शरीर में हल्कापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव, नयनों में तेजस्वता, रोग का अभाव, बिन्दु पर नियंत्रण, जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों की विशुद्धता ये सब हठसिद्धि के लक्षण है।

5. **प्रसुप्त शक्तियों का जागरण –** वास्तव में यदि देखा जाये तो योग की जितनी भी साधना–पद्धतियॉ है, चाहे हठयोग है, राजयोग हो, ज्ञानयोग–भक्तियोग,कर्मयोग इत्यादि जो भी हो, सभी का प्रयोजन बाहर से अन्दर की ओर यात्रा है अर्थात् योग वास्तव में अन्तर्जगूत की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान है। हठयोग में पहले स्थूल शरीर पर नियंत्रण की बात कही गयी है। उसके बाद क्रमशः प्राण एवं मन मन को नियंत्रित करने का अभ्यास किया जाता है। हठयौगिक अभ्यासों से इंडा एवं पिंगला में प्राण का संतुलन होने से सुषुम्ना में प्राण प्रवाह होने लगता है। जिससे प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर उर्ध्वगामी हो षट्चक्रों का भेदन करती हुई शिव से मिल जाती है और साधक को योग के चरम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

अतः स्पष्ट होता है कि हठयोग का एक प्रमुख उद्देश्य है – ''प्रसुप्ति से जागरण की यात्रा।''

6.आत्म परिष्कार – हठयोग का एक प्रमुख उद्देश्य ''आत्मपरिष्कार'' करना है। यह पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हठयोग, राजयोग का अभिन्न अंग है तथा इसका अभ्यास तक किया जाता है, जब तक राजयोग की सिद्धि न हो जाये और राजयोग का अंतिम लक्ष्य मनोनिग्रह के माध्यम से चिप्त, के मलों को, विक्षेपों को, पंचक्लेशों (अविद्या, अष्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) को दूर करना है। अतः यह कहा जा सकता है कि जो प्रयोजन राजयोग का है, वहीं हठयोग का भी है। वस्तुतः सभी योग साधनाओं का भी है। वस्तुतः सभी योग साधनाओं का चरम लक्ष्य तो एक ही है, बस यदि भिन्न है तो उस लक्ष्य तक पहुॅचने के मार्ग या पद्धतियॉ।

गुहचसमाज में कहा भी गया है –

''यदा न सिद्धयते बोधिर्हठयोगेन साधयेत्।''

– (गुहचसमाज)

अर्थात् ''यदि बोधि अर्थात ज्ञान प्राप्ति न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि हठयोग का प्रमुख उद्देश्य तो राजयोग की प्राप्ति ही है किन्तु साथ ही स्वास्थ्य संवर्धन, रोगमुक्ति, व्यक्तित्व विकास, आत्मपरिष्कार तथा प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण इत्यादि भी इसके प्रयोजन हैं, जिससे साधक को भौतिक एवं पारमार्थिक दोनों की क्षेत्रों में आनंद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 1. ''मत्स्येन्द्रपीठं जठर प्रदीप्तिं.....''यह श्लोक किस ग्रन्थ का है ?

क. शिवसंहिता ख. घेरण्ड संहिता ग. वशिष्ठ संहिता घ. हठप्रदीपिका

प्रश्न 2. धौति क्रिया किसके अन्तर्गत आती है –

क. आसन ख. प्राणायाम ग. षट्कर्म घ. मुद्रा

प्रश्न 3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

क. .....स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव लाता है।

ख. यह.....प्रमेह, उदावर्त, क्रूर वायु का निवारण कर शरीर को कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।

1.6 सारांश

इड़ा एंव पिंगला नाड़ी में प्राण संतुलन होने पर सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह होना तथा प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर क्रमशः षट्चक्रों को भेदन करते हुए शक्ति का शिव से मिलन अथवा साधक का समाधिस्य हो जाना ही हठयोग है, जो योगसाधना का चरम लक्ष्य है।

हकार – सूर्य नाड़ी का प्रतीक
ठकार – चंद्र नाड़ी का प्रतीक

हठयोग के उद्देश्य – हठयोग का सर्वप्रमुख प्रयोजन राजयोग की सिप्ति है। अन्य उद्देश्य निम्नानुसार हैं –

1. स्वास्थ्य परिरक्षण
2. आरोग्यता
3. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
4. प्रसुप्त शक्तियों का जागरण
5. आत्म परिष्कार।

शब्दावली

- विकार – रोग
- षट्कर्म – छः शुद्धि क्रियायें
- बोधि – ज्ञान
- उदावर्त्त – ऊपर जाने वाली वायु
- क्रूरवायु – दूषित वायु
- वस्ति – आंतों को शुद्ध करने वाली क्रिया
- धौति – शरीर को शुद्ध (स्वस्थ) बनाने की क्रिया
- प्रसुप्त – सोपी हुई, जो जागृत नहीं है
- मनोनिग्रह – मन पर नियंत्रण करना
- कुभंक – श्वॉस को बाहर या भीतर रोकना
- षट्चक्र – छः ऊर्जा केन्द्र
- कुंडलिनी शक्ति – चेतना शक्ति
- नाड़ी – जिनमें प्राण–प्रवाह होता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. घ प्रश्न 2. घ
प्रश्न 3. (क) आसन (ख) जलवस्ति

1.9 संदर्भग्रन्थ सूची

1. सूरी, स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला – 410403 (पुणे), महाराष्ट्र।
2. सरस्वती, निरंजनानंद (1997), घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।

3. सरस्वती, विज्ञानानंद (2007), योग विज्ञान। योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश – 249192।
4. वशिष्ठ संहिता (1984) कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनबला (पुणे), महाराष्ट्र।
5. व्योतिर्मचानंद (1999) व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसाइटी, लालबाग, लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश।
6. सिंह रामहर्ष (2007) स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
7. सिंह रामहर्ष (1999) योग एंव यौगिक चिकित्सा। चौखंभा सूरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. हठयोग से आप क्या समझते है ? इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न 2.''हठयोग, राजयोग का अभिन्न अंग है।'' इस कथन की तर्कसहित व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 3. हठयोग के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

इकाई– 2 सप्तसाधन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सप्तसाधन अर्थ
2.4 घेरण्ड संहिता के अनुसार सप्तसाधनों का वर्णन
2.5 सप्तसाधन हेतु आवश्यक योगाभ्यास
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में आप हठयोग क्या है? विभिन्न विद्वानों ने किस–किस ढंग से इसे परिभाषित किया है, इसका स्वरूप एवं उद्देश्य क्या है। इत्यादि का अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–

''सप्तसाधन'' महर्षि घेरण्ड, राजा चण्डकपालि को तत्वज्ञान का उपदेश देते हुये इसकी प्राप्ति के उपायों के विषय में बतलाते हैं।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु घटस्थ योग अर्थात् हठयोग का अभ्यास करना चाहता है, तो उसके अन्दर इसके लिये पात्रता होनी चाहिये। पाठकों, जैसा कि हम सभी जानते है कि यदि हमें अपने जीवन में कुछ भी प्राप्त करना हो, कोई भी उपलब्धि हासिल करनी हो तो उसके लिये कुछ गुणों या योग्यताओं का विकास करना न केवल आवश्यक वरन् अनिवार्य है। जब सामान्य जीवन के लिये भी पात्रता या योग्यता का नियम लागू होता है तो, आध्यात्मिक क्षेत्र में तो बिना उपयुक्त पात्रता के उन्नति या परिष्कार की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

अतः पाठकों, महर्षि घेरण्ड ने योग मार्ग पर अग्रसर होने के लिये एक साधक में जो गुण आवश्यक है जो योग्यतायें, क्षमतायें उसके अन्दर होनी चाहिये, उन्हीं को 'सप्तसाधन'' की संज्ञा दी है। ऐसे गुण सात बताये गये हैं। अतः संख्या में सात होने से सप्तसाधन हैं। जैसे कि शुद्धता, दृढ़ता, स्थिरता, लाघवता इत्यादि।

अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन सप्तसाधनों को किस प्रकार से विकसित किया जा सकता है? इसमें क्या–क्या कठिनाइयाँ आ सकती हैं, इत्यादि। तो आइये, आपकी इन्हीं सब जिज्ञासाओं के समाधान के लिये चर्चा करते है सप्तसाधनों के स्वरूप पर।

2.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- सप्तसाधन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सप्तसाधन कौन–कौन से है, इसका वर्णन कर सकेंगे।
- सप्तसाधनों का पारस्परिक विश्लेषण कर सकेंगे।
- सप्तसाधन की प्राप्ति के लिये कौन–कौन से हठयौगिक अभ्यास किये जाते हैं, इनका ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.3 सप्तसाधन : अर्थ–

हठयोग का या साधन–प्रधान साधना पद्धति है, जिसे महर्षि घेरण्ड ने घ्टास्थ योग नाम दिया है। महर्षि का मत है कि हठयोग के अभ्यास के लिये शरीर का शुद्ध होना, पवित्र होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना साधना में प्राप्ति नहीं हो सकती। इस शुद्धि को उन्होंने ''हाटशुद्धि'' का नाम दिया। अब प्रश्न यह उठता है कि ''हाटशुद्धि'' से क्या आशय है? यह शुद्धि किस प्रकार होती हैं? देखिये, 'हाटशुद्धि' का अर्थ यहां शारीरिक शुद्धता शारीरिक पवित्रता से नहीं वरन् शरीर शुद्धि के द्वारा आत्मशुद्धि करना है। इसको स्पष्ट करते हुये महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

''आकुम्भ इवाम्भस्यो, जीर्यमाणः सदा घटः।
योगानलेन संदहय, घटशुद्धिं समाचरेत्।।''

– (घेरण्ड संहिता 1/8)

अर्थात् ''मिट्टी के कच्चे हाट में जल भर दिया जाये तो वह गलकर नष्ट हो जायेगा किन्तु यदि हाट को पका कर जल भरें, तो न गलेगा और नष्ट ही होगा। इसी प्रकार जीव के अपरिपक्व के विषय में समझना चाहिये। यह शरीर योगाग्नि के द्वारा ही परिपक्व हो सकता है। अतः शरीर को परिपक्व बनाने के लिये योगाभ्यास आवश्यक हैं।''

उपर्युक्त श्लोक का आशय यह है कि योग के निरन्तर अभ्यास से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसे योगाग्नि या योग का तेज कहा जाता है। इस योगशक्ति रूप अग्नि से शरीर के विकार तो दूर होते ही है, साथ ही हमें मन एवं अन्तःकरण (अहं का बुद्धि और चित्त) की शुद्धि भी प्राप्त होती है क्योंकि शरीर, मन, अन्तःकरण तीनों एक दूसरे से संबंधित है। जिस व्यक्ति का शरीर शुद्ध होता है, उसका मन भी शुद्ध होता है और जिसका मन शुद्ध होता है। उसकी भावनायें भी अच्छी होती है अर्थात्– बुद्धि विवेकपूर्ण निर्णय लेती है, अहंकार का शमन होता है और चित्त के संस्कारों का क्षय होता है। इसी ''आत्मशुद्धि'' को महर्षि घेरण्ड ने ''हाटशुद्धि'' कहा है। इस हाटशुद्धि के लिये जिन साधनों का वर्णन किया गया है, उन्हें ही 'सप्तसाधन' कहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि ''हाटशुद्धि के लिये अपनायें जाने वाले सात साधनों (शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लालच, प्रत्यक्ष, निर्लिप्तता) को ''सप्तसाधन'' के नाम से अभिहित किया जाता है।

2.4 घेरण्ड संहिता के अनुसार सप्तसाधनों का वर्णन–

महर्षि घेरण्ड राजा चण्डकपालि की जिज्ञासा को शान्त करते हुये हाटशुद्धि के उपायों की चर्चा करते है। राजा महर्षि से पूछते हैं कि ''हम घटस्थ योग का अभ्यास कैसे करें?'' इस पर महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि–

''शोधनं दृढ़ता चैव, स्थैर्य धैर्य च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च, घटस्य सप्तसाधनम्।।''

– (घेरण्ड संहिता 1/9)

अर्थात् ''शरीर की शुद्धि के लिये अर्थात् घटस्थ योग के अभ्यास के लिये सात गुणों का होना आवश्यक है–शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष, और निर्लिप्तता।
इन सप्तसाधनों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार हैं–

1. शोधनम्–

शोधन का सामान्य अर्थ है– शुद्धिकरण। पवित्रीकरण किन्तु प्रश्न यह कि यह शुद्धि किसकी हो? महर्षि घेरण्ड ने यहाँ जिस शुद्धि की बात की है, वह शरीर की भी है, मन की भी है और अन्तःकरण की भी अर्थात् शरीर और मन का विकार रहित होना, बुद्धि का विवेकशील होना, अहंकार का नाश तथा चित्त के मलों का नाश ही शोधन है।

2. दृढ़ता–

सप्तसाधनों में इसका दूसरा स्थान 'दृढ़ता' का है। सामान्यतया दृढ़ता से आशय शारीरिक बल से लिया जाता है, किन्तु घटस्थ योग के सन्दर्भ में दृढ़ता से आशय प्रचण्ड संकल्प शक्ति से है। लक्ष्य प्राप्ति होने तक धैर्यपूर्वक निरन्तर नियमित अभ्यास करते रहना दृढ़ता का लक्षण है दूसरे शब्दों में आदर्शो से समझौता न करना अथवा अचल निष्ठा का नाम ही दृढ़ता है। अतः स्पष्ट है कि आत्मशुद्धि के लिये साधक को न केवल शारीरिक वरन् मानसिक वैचारिक एवं भावनात्मक रूप से भी अत्यन्त दृढ़ होना आवश्यक है।

3. स्थैर्यम्–

आत्मशुद्धि के लिये तीसरा प्रमुख गुण हैं– 'स्थिरता'। स्थिरता का अर्थ यहाँ पर देह की स्थिरता से लिया गया है, क्योंकि जब तक व्यक्ति का शरीर स्थिर नहीं होता, तब तक उसका साधना में मन नहीं लगेगा। उसे हर पल यह अनुभव होगा कि मैं शरीर हूँ अर्थात् वह देहभाव से ऊपर नहीं उठ पायेगा जबकि साधना के मार्ग पर अग्रसर होने के लिये शरीर से ऊपर उठने का भाव अत्यावश्यक है। स्थिरता की इस महत्ता को महान् दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, अध्यात्मपेप्ता महर्षि पतंजलि ने भी अपने योगसूत्र में वर्णित किया है। उन्होंने आसन के सन्दर्भ में इसका वर्णन करते हुये कहा है–

''स्थिरं सुखमासनम्।''

– (पातंजल योगसूत्र साधन पाद 46)

अर्थात् ''स्थिरतापूर्वक सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।''
इसका मतलब यह है कि आसन करते समय हमें अपने शरीर को स्थिर रखना चाहिये किसी प्रकार का तनाव, खिंचाव महसूस नहीं होने देना चाहिये। क्योंकि स्थिरता के अभाव में हमारा मन साधना में एकाग्र नहीं होगा। अतः सहज भाव से आसन करने चाहिये।

4. धैर्यम्–

चौथा गुण है– धैर्य। यह एक मानसिक गुण है। धैर्य का अर्थ है– ''परिस्थितियों से अप्रभावित रहना अर्थात् स्थिति प्रतिकूल होने पर भी उद्विग्न न होना। सहनशीलता बरकरार रखना और चुनौतियों का डटकर मुकाबला करना। जब मन में किसी प्रकार का विकार नहीं रहता, तब मानसिक क्षमता प्रखर होती है और धैर्य का गुण विकसित होता है।

5. लाघवम्–

हठयोग के साधक के लिये पांचवाँ आवश्यक गुण है– लाघवता अर्थात् हल्कापन। शरीर दुबला–पतला स्फूर्तिवान होना चाहिये। स्थूल, भारी–भरकम नहीं क्योंकि स्थलू शरीर में अनेक प्रकार के विकार जन्म लेते है तथा व्यक्ति आलस्य और प्रमाद से ग्रस्त रहता है।

किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि चर्बीयुक्त शरीर वाले लोग योगी नहीं बन सकते। यहाँ पर साधक के लिये आवश्यक गुणों की चर्चा की जाती है। अतः ऐसा कहा गया है, किन्तु आपने प्रायः देखा होगा कि जितने भी बड़े–बड़े योगी हुये हैं, उनमें से अधिकांश का पेट बड़ा होता है? वस्तुतः योगसाधना करते हुये जब प्राणशक्ति का जागरण होता है तो बहुधा ऐसा होता है कि वह जीवनीशक्ति नाभिचक्र (मणिपुरचक्र) में केन्द्रित हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप पेट मोटा हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि योगियों के पेट बढ़ने का कारण गरिष्ठ भोजन का सेवन नहीं वरन् श्रणशक्ति का मणिपुर चक्र में केन्द्रीभूत होना है। यह शरीर की विकृत अवस्था नहीं वरन् प्राण–जागृति की अवस्था है, किन्तु योगाभ्यास प्रारंभ करने की स्थिति में शरीर हल्का अर्थात् दुबला–पतला होना चाहिये।

6. प्रत्यक्षम्–

सप्तसाधनों में छठा हैं– ''प्रत्यक्ष''। प्रत्यक्ष शब्द प्रति उपसर्गपूर्वक अक्षम् धातु से बना है– प्रति+अक्षम् = प्रत्यक्षम्

प्रति – सामना, साम्मुख्य
अक्षम् – नेत्र, चक्षु, देखना

इसका अर्थ है– गृहणशीलता अर्थात् ग्रहण करने का स्वभाव। वस्तुतः सूक्ष्म या आन्तरिक अनुभवों को मन की दृष्टि में स्पष्ट रखना ही 'प्रत्यक्ष' है। प्रत्यक्ष एक अनुभव की अवस्था है, जिसमें साधक एक आन्तरिक अनुभव को देखता, अनुभव करता और उसी में अपने आपको स्थित करता है। इसे एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। जैसे माना कि आप, अपने मुँह में एक गुलाबजामुन डालते हैं। अब आँखें बन्द करके गुलाब जामुन के स्वाद का अनुभव कर रहे हैं वह न तो चासनी का है औन नहीं उस सामग्री का जिससे गुलाब जामुन बना है, वरन् चासनी और उसे सामग्री के मिलने से जो तीसरा तत्व उत्पन्न हो रहा है, उसे आप अनुभव कर रहे हैं और कह रहे हैं अहाः कितना स्वादिष्ट है। वह स्वाद इतना सूक्ष्म है कि आप उसे देख नहीं सकते किन्तु अनुभव कर सकते हैं क्योंकि वह वहाँ पर उपस्थित है। इसी का नाम 'प्रत्यक्ष' है।

7. निर्लिप्तम्–

घटशुद्धि हेतु आवश्यक अंतिम गुण है– निर्लिप्तता। निर्लिप्त होने से यहाँ आशय समाधिस्थ होने से नहीं है, वरन् सांसारिक विषय–वासनाओं के प्रति मन का अनासक्त होना ही निर्लिप्त होना है। लिप्त होने का अर्थ हैं– राग होना, आसक्ति होना। जैसे–

''माखी गुड़ में गड़ी रहे, पंख रहे लपटाय।
हाथ मले औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय।।''

निर्लिप्त होने का अर्थ है– ''इन्द्रिय विषयों से विमुख होकर आत्मज्ञान में स्थित हो जाना।

अतः स्पष्ट है कि महर्षि घेरण्ड ने घटस्थ योग के अभ्यास के लिये साधक में शुद्धि, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघवता, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता ये सात गुण आवश्यक माने हैं।

सप्तसाधन

1. शोधन
2. स्थैर्य
3. लाघवता
4. प्रत्यक्ष

5. दृढ़ता
6. धैर्य
7. निर्लिप्तता

2.5 सप्तसाधन हेतु आवश्यक योगाभ्यास–

महर्षि घेरण्ड ने घटस्थ योग (हठयोग) के लिये साधक में निम्न सात गुण आवश्यक बताये हैं–

1. शोधन
2. दृढ़ता
3. स्थिरता
4. धैर्य
5. लाघवता
6. प्रत्यक्ष
7. निर्लिप्तता

उपर्युक्त सात गुणों के समावेश के लिये सात विशेष प्रकार के योगाभ्यास है, जिनका उल्लेख करते हुये कहा गया है–

''षट्कर्मणा शोधनं च, आंसनेन भवेद् दृढ़म्।
मुद्रप्त स्थिरता चैव, प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवंन्च, ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च, मुक्तिरेव न संशयः।।''

– (घेरण्ड संहिता 1/10–11)

अर्थात् ''षट्कर्मो से शरीर शुद्धि और आसनों से दृढ़ता मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति या हल्कापन, ध्यान से आत्म–साक्षात्कार एवं समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।''

सप्तसाधन हेतु योगाभ्यास :–

षट्कर्म	–	शोधन
आसन	–	दृढ़ता
मुद्रा	–	स्थिरता
प्रत्याहार	–	धैर्य
प्राणायाम	–	लाघवता
ध्यान	–	प्रत्यक्ष
समाधि	–	निर्लिप्तता

उपर्युक्त योगाभ्यासों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार हैं–

1. षट्कर्म–

जिस प्रकार आयुर्वेद में पंचकर्म विज्ञान है, उसी प्रकार हठयोग में षट्कर्मो का विकास हुआ हैं। इन क्रियाओं का प्रयोग देह की आन्तरिक शुद्धि के लिये किया जाता है। योग साधना और विशेष रूप से प्राणायाम के अभ्यास के लिये शरीर का आन्तरिक रूप से शुद्ध होना प्रमुख रूप से नाड़ी संस्थान की शुद्धि अत्यावश्यक है। ऐसा माना जाता है कि षट्कर्म शरीर शोधक, उत्थापक और विचित्र गुण संस्थापक है। वस्तुतः आयुर्वेदीय पंचकर्मे से प्रेरित होकर ही हठयौगिक षट्कर्मो का विकास हुआ है। आयुर्वेदीय पंचकर्मो को प्रमुखतः

रूग्णावस्था में प्रयुक्त किया जाता है। अतः इनमें शुद्धि क्रियाओं के साथ–साथ उपयुक्त यंत्रों एवं औषधियों का भी प्रयोग किया जाता है, किन्तु हठयोग के षट्कर्म प्रधानतः स्वस्थ साधकों के लिये हैं, तथा साधना के रूप में हैं। इसलिये इनमें बहुत अधिक यंत्रों एवं औषधियों के प्रयोग पर बल नहीं दिया गया है। जैसा कि ऊपर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि षट्कर्मो का मुख्य उद्देश्य काया शोधन है। अतः प्रदीपिका कार योगीन्द्र स्वात्मारामसूरी के अनुसार–

भेदः श्लेस्माधिकः पूर्व षंट्कर्माणिसमाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेप्तानि, दोषाणां समभावतः।।''

– (हठप्रदीपिका 2/21)

अर्थात् ''स्थूलता और कफ जिसे अधिक हो उसे पहले छः शोधन क्रियायें करनी चाहिये किन्तु जिनमें त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) की समानता हो, उन्हें इन क्रियाओं के अभ्यास की विशेष आवश्यकता नहीं है। अतः स्पष्ट है कि षट्कर्मो का अभ्यास प्रतिदिन करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु कभी–कभी करते रहना चाहिये जिससे की स्फूर्ति एवं आन्तरिक स्वच्छता बनी रहे। सामान्यतः निम्न छः कर्मी की गणना षट्कर्मो के अन्तर्गत की जाती हैं–

1. धौति
2. वस्ति
3. नेति
4. नौलि (लौलिकी)
5. त्राटक
6. कपालभाँति

इन षट्कर्मो के अभ्यासों से हम विकारों को दूर कर शरीर को स्वच्छ, निर्मल, दीर्धायु बना सकते हैं। वेदों, उपनिषदों में अनेक स्थानों पर कहा गया है–

''जीवेम शरदंशतम्।।

अर्थात् – ''हम सौ वर्षों तक जीयें''

यह प्राचीन ग्रन्थों की विचार धारा नहीं वरन् एक वास्तविक सत्य है। यदि मनुष्य रोगों से मुक्त हो जाये तो 100 वर्ष ही नहीं वरन् इससे अधिक जीना भी स्वाभाविक है। षट्कर्मों के अभ्यास से समाधि की प्राप्ति भी होती है, क्योंकि इनका उद्देश्य मात्र देहशुद्धि नहीं वरन् आत्मशुद्धि भी है। जब शरीर, मन एवं अन्तःकरण तीनों की पवित्रता होती है। तभी योग के उच्च अभ्यासों में प्रवृत्त हुआ जा सकता है। इन षट्कर्मो का क्रमशः वर्णन निम्नानुसार है–

धौति– षट्कर्मो में प्रथम शुद्धि क्रिया है– 'धौति'। यह आमाशय और आहारनाल की सफाई का कार्य करती है। यह सफाई पानी, वायु एवं कपड़े तीन प्रकार से की जाती है। लाभ धौति के अभ्यास से पाचन संस्थान से सम्बद्ध रोग जैसे कब्ज, अपच, अम्लपित्त, दूर होते है। भेद धौति के निम्न चार भेद हैं–

1. अन्तधौति
2. दन्तधौति
3. हृदधौति
4. मूलशोधन।

पुनः अन्तधौति के चार प्रकार हैं–

1. वातसार अन्तधौति
2. वारिसार अन्तधौति
3. अग्निसार अन्तधौति
4. बहिष्कृत अन्तधौति ।

दन्तधौति के पाँच भेद हैं, जो निम्न हैं–

क. दन्तमूल
ख. जिह्वामूल
ग. कर्णरन्ध्र–दो
घ. कपालरन्ध्र।

ह्रदधौति के तीन भेद किये गये हैं–

अ. दण्डधौति
ब. वमनधौति
स. वस्त्रधौति

चतुर्थ 'मूलशोधन' को 'गणेशक्रिया' के नाम से भी जाना जाता है।

वस्ति– 'वस्ति; द्वितीय शुद्धि क्रिया है। यह एनिमा की भाँति कार्य करती है। वस्ति बड़ी आँत को धोने एवं स्वच्छ करने की एक सरल प्रक्रिया है। इसमें गुदा द्वार से जल या वायु को खींचकर बड़ी आँत में रखा जाता और कुछ समय बाद उसका निष्कासन कर दिया जाता है।

वस्ति के भेद– वस्ति के निम्न दो भेद हैं–

क. जलवस्ति
ख. स्थल वस्ति।

लाभ– बड़ी आँत की सफाई की सर्वोत्तम विधि।

जठनाग्नि की प्रदीप्ति – कब्ज, अपच, अम्लपित्त, इत्यादि पाचन संस्थान से सम्बद्ध रोगों में लाभकारी।

नेति– तीसरी शुद्धि क्रिया 'नेति' है। नाक, कान, एवं गले की सफाई के कारण यह ई.एन. टी. डॉक्टर की तरह कार्य करती है।

विधि– जल नेति में एक नासिकारन्ध्र से पानी डाला जाता है और दूसरे से निकाला जाता है।

भेद– नेति क्रिया के अनेक भेद हैं–

क. जल नेति
ख. रबड़ नेति
ग. सूत्र नेति

लाभ– साइनोसाइटिस, माइग्रेन, अग्र ललाट में दर्द, आँखों का थकना, आँखों में जलन एवं पानी आना, राइनाइटिस, कान एवं गले से सम्बद्ध रोगों में लाभकारी।

नौलि– चौथी क्रिया है– नौलि। इसे ''लौलिकी'' के नाम से भी जाना जाता है इस क्रिया के अभ्यास से उदरस्थ अंगों की मालिश होती है, परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता में अभिवृद्धि होती है।

भेद– नौलि के निम्न चार भेद हैं–

क.सामान्य या मध्यम नौलि
ख.वाम नौलि
ग.दक्षिण नौलि
घ.भ्रमर नौलि या केवल नौलि

लाभ–

- पेट के समस्त अंगों की मालिश।
- माँसपेशियों, रक्तवाहिकाओं, तन्त्र–तंत्रिकाओं, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, रक्त–परिसंचरण संस्थान को शुद्ध करना।
- सुचारू रक्त प्रवाह
- सम्पूर्ण शरीर के भीतर प्राणशक्ति का नवसंचार
- पाचन संस्थान के रागों में लाभदायक।

त्राटक– पाँचवी शुद्धि क्रिया है 'त्राटक' वस्तुतः स्थिर दृष्टि से किसी एक बिन्दी को देखना ही त्राटक है। त्राटक के द्वारा मस्तिष्क के क्षेत्र का शान्त एवं निर्मल बनाने का प्रयास किया जाता है। आँखों एवं मस्तिष्कीय संस्थान के अंगीय एवं कार्यात्मक विकारों को दूर करने में इसका अभ्यास अत्यन्त लाभकारी है।

भेद– महर्षि घेरण्ड ने त्राटक के निम्न तीन भेद बताये हैं–

क. बहिर्त्राटक
ख. अन्तर्त्राटक
ग. अधोर्त्राटक

लाभ–

- मानसिक एकाग्रता बढ़ाने वाला।
- नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला।
- त्राटक के अभ्यास से दूर दृष्टि दोष, निकट दृष्टि दोष तथा आँखों से सम्बद्ध अनेक रोगों को बहुत कुछ हद तक नियंत्रित रखा जा सकता है।

कपालभाँति– अंतिम शुद्धि क्रिया है–

''कपालभाँति'' का संबंध प्राणमय कोश की शुद्धि से हैं कपालभाँति वस्तुतः फेफड़ों का अभ्यास है।

भेद– कपालभाँति के निम्न तीन भेद हैं–

अ. वातकर्म कपालभाँति
ख. व्युत्क्रम कपालभाँति
ग. शीतकर्म कपालभाँति

लाभ–

- श्वांस नली को विकाररहित बनाना
- फेफड़ों से सम्बन्धित रोग दूर करना
- स्मरण शक्ति में वृद्धि
- स्नायविक अव्यवस्था एवं मस्तिष्क रोग में लाभकारी।
- रक्त को शुद्ध करना इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभांति इन छः शुद्धि क्रियाओं के रूप में महर्षि घेरण्ड ने सम्पूर्ण शरीर के आन्तरिक शोधन का अत्यन्त उपर्युक्त उपाय बताया है।

षट्कर्म

धौति	–	1.	अन्तधौति
	–	2.	दन्तधौति
	–	3.	हृदधौति
	–	4.	मूलशोधन (गणेश क्रिया)
वस्ति	–	1.	जल वस्ति
	–	2.	स्थल वस्ति
नेति	–	1.	जल नेति
	–	2.	रबड़ नेति
	–	3.	सूत्र नेति
नौलि	–	1.	सामान्य या मध्यम नौलि
	–	2.	वाम नौलि
	–	3.	दक्षिण नौलि
	–	4.	भ्रामर या केवल नौलि
त्राटक	–	1.	बहिर्त्राटक
	–	2.	अन्तर्त्राटक
	–	3.	अधोर्त्राटक
कपालभाति	–	1.	वातकर्म कपालभाति
	–	2.	व्युत्क्रम कपालभाति
	–	3.	शीतक्रम कपालभाति

धौति के भेद

अन्तधौति	–	1.	वातसार
	–	2.	वारिसार
	–	3.	अग्निसार
	–	4.	बहिष्कृत
दन्तधौति	–	1.	दन्तमूल
	–	2.	जिह्वामूल
	–	3.	कर्णरन्ध्र – दो
	–	4.	कपालरन्ध्र
हृदधौति	–	1.	दण्ड धौति
	–	2.	वमन धौति
	–	3.	वस्त्र धौति

मूलशोधन या गणेश क्रिया

आसन– महर्षि घेरण्ड ने सप्तसाधनों की चर्चा करते हुये दृढ़ता का गुण विकसित करने के लिये आसनों का अभ्यास आवश्यक बताया है। योगसाधना में आसनों के अभ्यास पर सभी आचार्यो ने बल दिया है, और इसके महत्व को बताया है, किन्तु भिन्न–भिन्न योग पद्धतियों

में इसके (आसन) के क्रम में भिन्नता मिलती है। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में आसनों को यम–नियम के बाद तीसरा स्थान दिया गया है। जबकि हठप्रदीपिका में आसन का प्रथम उपदेश में ही वर्णन है और महर्षि घेरण्ड ने षट्कर्मो के बाद दूसरे नम्बर पर आसनों का उल्लेख किया है। साथ ही विभिन्न उपनिषदों जैसे ध्यानबिन्दु उपनिषद, तेजबिन्दु उपनिषद, योगचूड़ामणि उपनिषद, में भी आसनों का उल्लेख मिलता है, किन्तु विस्तार नहीं किया गया है। इनका विस्तृत विवेचन हठयोग के ग्रन्थों (हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, शिवसंहिता) में ही उपलब्ध है।

मण्डलब्राह्मणोपनिषद में लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठने की स्थिति को आसन कहा गया है। तेजबिन्दु उपनिषद में भी आसन को इसी रूप में परिभाषित किया गया है। उपनिषदों में जो परिभाषायें दी गई हैं, वे पातंजल सम्मत परिभाषा के समान ही है। 'योगसूत्र' में कहा गया है–

''स्थिरसुखं आसनम्''

– (योगसूत्र/समाधिपाद/46)

अर्थात् ''स्थिर सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।'' हठयोग में आसनों के अनेक प्रकार बताये गये हैं। ऐसा माना जाता है कि जितनी योनियाँ है अर्थात् 84 लाख योनियों के समान 84 लाख आसन भी हो सकते हैं–र

''आसनानि समस्तानि, पावन्तो जीवजन्तपः।

चतुररीति लक्षाणि, शिवंन कन्थितानि च।।

तेषां मध्ये विशिष्टानि, षोडशोनं शतं कृतम्।

तेषां मध्ये मर्त्यलोके, द्वात्रिंशदासनं शुभम्।।''

– (घेरण्ड संहिता 2 /1/2)

अर्थात् महर्षि घेरण्ड ने कहा– ''संसार में जितने जन्तु हैं, उतनी ही संख्या आसनों की है। भगवान् शिव ने पहले चौरासी लाख आसन कहे, उनमें से चौरासी आसन श्रेष्ठ हैं। उन चौरासी आसनों से भी पच्चीस आसनों को अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझना चाहिये। हठप्रदीपिका में स्वात्माराजी ने 15 आसनों का वर्णन किया है।

परन्तु योगसूत्रानुसार साधक अपनी आवश्यकता के हिसाब से जिस भी विधि से चिरकाल तक स्थिरभाव से सुखपूर्वक बैठ सके वही आसन उसके लिये सबसे उपर्युक्त है। इसके अलावा जिस आसानी पर बैठकर योगाभ्यास किया जाता है, उसे भी आसन कहते हैं। अतः वह भी ऐसी हो, जिसमें स्थिरतापूर्वक एवं स्वस्थपूर्वक बैठा जा सके। श्रीमद्भगवद गीता में भी आसानी की स्थिर एवं अचल स्थापना करने का निर्देश दिया गया है और साथ ही कहा गया है कि योगाभ्यास के दौरान शरीर, गर्दन और सिर तीनों एक सीध में स्थिर रहे। वहां भी किसी आसन विशेष का नामोल्लेख नहीं है। जब साधक देहभाव से ऊपर उठ जाता है पुयत्न शिथिल हो जाते हैं और मन अब विराट ब्रह्मम में लीन हो जाता है तो आसन सिद्ध हो जाता है। स्थिर सुखपूर्वक बैठकर समस्त प्रकार का शारीरिक चेष्टाओं का परित्याग कर देना ही वस्तुतः ''प्रयत्न शैथिल्य'' है। अतः आसन को सिद्ध करने के निम्न दो उपाय बताये गये हैं–

क. प्रयत्न शैथिल्य

ख. अनंतसमापति।

आसन सिद्ध हो जाने पर शरीर शीत–उष्ण इत्यादि द्वन्द्वों के आघात को सहन करने लायक हो जाता है अर्थात् इनसे अप्रभावित रहता है, दृढ़ता का विकास होता है, जिससे ये द्वन्द्व चित्त को अस्थिर करके साधना में विध्न नहीं डाल पाते। यदि उपर्युक्त परिभाषा को दृष्टिगत रखा जाये तो आसनों की कोई निश्चित संख्या नहीं बतायी जा सकती फिर भी विभिन्न योग ग्रन्थों में आसनों के भिन्न–भिन्न नाम एवं संख्याओं का उल्लेख मिलता है, जो निम्नानुसार हैं–

घेरण्ड संहिता के अनुसार आसन भेद–

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वक्रं च स्वस्तिकम्।
सिंहं च गोमुखं वीरीं धनुरासनमेव च।।
मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्पेन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुप्कटं संकटं तथा।।
मयूरं कुक्कुटं कूर्म तथा चोप्तान कूर्मकम्।
उप्तानमण्डूकं वृक्ष मण्डूकं, गरूडं वृषम्।।
शलभं मकरं चोष्ट्रं भूजंडः योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनान्येप मर्त्ये मर्त्ये सिद्धि प्रदानि च।।

– (घेरण्ड संहिता 2/3–6)

अर्थात् महर्षि घेरण्ड कहते हैं– ''रस मृत्यु लोक में, जहाँ प्रत्येक मानव की मृत्यु अनिवार्य है, सिद्धि के लिये निम्न 32 आसन पर्याप्त हैं–

1. सिद्धासन
2. पद्मासन
3. भद्रासन
4. मुक्तासन
5. वक्रासन
6. स्वक्तिकासन
8. सिंहासन
9. गोमुखासन
10. वीरासन
10. धनुरासन
11. मृतासन (शवासन)
12. गुप्तासन
13. मत्स्यासन
14. मत्स्येन्द्रासन
15. गोरक्षासन
16. पश्चिमोतानासन
17. उत्कट आसन
18. संकटआसन
19. मयूरासन
20. कुक्कुटासन
21. कूर्मासन
22. उप्तान कूर्मासन
23. मण्डूकासन
24. उप्तान मण्डूकासन
25. वृक्षासन
26. गरूड़ासन
27. वृषासन
28. शलभासन
29. मकरासन
30. उष्ट्रासन
31. भुजंगासन
32. योगासन।

योगासन करते समय शरीर को विभिन्न प्रकार की स्थितियों में इस प्रकार रखते हैं कि शरीर के सभी संस्थान मुख्य रूप से तंत्रिका तंत्र और अन्तःस्रावी संस्थान सुचारू रूप से कार्य करते हुये शरीर और मन दोनों को स्वस्थ बना सके। वास्तव में योगासन एक ऐसी पद्धति है, जिसके माध्यम से शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास,

वृद्धावस्था ताकि रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन, जो कि योग का अभीष्ट प्रभाव है, सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। आसनों का अभ्यास किसी योग्य योगगुरू के निर्देशन में दैनिक जीवन में किसी प्रकार की अशान्ति के बिना प्रत्येक प्रकार की उम्र, लिंग, स्थान, जलवायु आदि में किया जा सकता है।

इस प्रकार आसनों से केवल स्थूल शरीर का संवर्धन ही नहीं होता अपितु शारीरिक, मानसिक विक्षांति भी मिलती है। इसलिये वर्तमान समय में तनाव, चिन्ता, अवसाद इत्यादि को दूर करने के लिये आसनों का अभ्यास किया जाता है। योगीन्द्र स्वात्माराम जी ने आसनों के महत्व का वर्णन करते हुये कहा है–

हठस्य प्रथमाड गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।
कुपन्तिदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाड्गलाघावम्।।

– (हठप्रदीपिका 1/17)

अर्थात् ''आसन चूँकि हठयोग का पहला अंग है, अतः सर्वप्रथम उसका निरूपण करते हैं। आसन (शारीरिक एवं मानसिक) स्थिरता आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव लाता है। सामान्य शारीरिक व्यायाम केवल माँसपेशियों को प्रभावित करते है, किन्तु आसनों का प्रभाव शरीर के प्रत्येक संस्थान पर पड़ता है। आसनों से न्यूरॉनन की नेटवर्किंग सुचारू रूप से होती है, प्रत्येक हार्मोन का संतुलित मात्रा में स्राव होता है, जिसका प्रभाव विभिन्न प्रकार की चयापचय क्रियाओं के रूप में शरीर पर देखने को मिलता है। विभिन्न प्रकार के योगासनों से प्राप्त होने वाले लाभ का यही आधार है।

''आसनों से ध्यान तथा समाधि के लिये आवश्यक सुखकर तथा स्थिर शारीरिक स्थितियों तथा शरीर विकार के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शरीर क्रियायिक, जैवरासायनिक तथा मानसिक परिवर्तन शरीर में होते हैं। इन परिवर्तनों में भार में कमी, श्वाँस गति में कमी, वक्षःस्थल के विस्तार में वृद्धि। वाइटल कैपेसिटी में वृद्धि (फुफ्फुसों के फुलाव एवं संकोच में वृद्धि), रक्तगत शर्करा में कमी, रक्तगत वसा में कमी, रक्तगत प्रोटीन में वृद्धि, अधिवृक्क ग्रन्थि के कार्यो में विकास तथा कुछ मानसिक क्रियाओं में प्रगति जैसे बुद्धि लब्धि (IQ) स्मृति लस्धि (MQ) कार्यक्षमता तथा मानसिक थकान में ह्रास हुआ। इसके साथ–साथ न्यूरोफिजियोलॉजिकल तथा न्यूरोहार्मोनल परिवर्तन भी ध्यान देने योग्य थे। (उड्डुवा एवं सिंह, 1971)

''योगासनों से मुख्य रूप से शरीर की माँसपेशियों को समुचित व्यायाम तथा विश्रान्ति प्राप्त होती है और शरीर में बिना किसी थकान के स्थिर, दृढ़ तथा समन्वित कार्य करने की क्षमता आती है।''

(डॉ. सिंह 1974)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आसन शारीरिक रोगों को दूर कर सुदृढ़, सुगठित, आकर्षण शरीर एवं स्वस्थ मन प्राप्त करने के प्रभावशाली साधन हैं।

ग्रन्थ	योग साधना के अंग	योग साधना में आसनों का स्थान
पातंजल योग सूत्र	अष्टॉग योग	तृतीय स्थान
हठयोग प्रदीपिका		प्रथम स्थान
घेरण्ड संहिता	सप्तांग	द्वितीय स्थान
ध्यान बिन्दूपनिषद	षडंग	प्रथम स्थान
तेज बिन्दूपनिषद	पंचदशांग	सप्तम स्थान

विविध ग्रन्थों के अनुसार आसनों की संख्या

ग्रन्थ नाम	आसनों की संख्या	आसनों के नाम
योग चूड़ामणि उपनिषद	2	सिद्धासन, कमलासन
योग कुंडल उपनिषद	2	पद्मासन, वज्रासन
अमृतानाद उपनिषद	3	पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन
हठप्रदीपिका	15	स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, उप्तानकूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्मिोप्तानासन, मयूरासन, शवासन,
घेरण्ड संहिता	32	सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन (शवासन), गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कट आसन, संकट आसन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उप्तान कूर्मासन, मण्डूकासन, उप्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, गरूड़ासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन, योगासन

आसनों के भेद

ध्यानात्मक आसन	विश्रान्तिकारक आसन	संवर्धनात्मक आसन
• पदमासन • सिद्धासन • स्वस्तिकासन • वज्रासन • मुक्तासन • भद्रासन इत्यादि	• शवासन • बालासन • मकरासन इत्यादि	• वीरासन • धनुरासन • भुजांगासन • गोमुखासन • पश्चिमोत्तानासन • पादहस्तासन • योगासन • उष्ट्रासन • कुक्कुटासन • मयूरासन • मत्स्यासन

- मत्स्येन्द्रासन
- मण्डूकासन
- कूर्मासन
- उप्तान कूर्मासन
- चक्रासन
- हलासन
- शलभासन
- हस्तउत्थानासन

इत्यादि

मुद्रा– सप्तांगों की चर्चा करते हुये महर्षि घेरण्ड आगे कहते हैं कि मन एवं प्राण की चंचलता समाप्त कर स्थिरता की प्राप्ति के लिये मुद्राओं का अभ्यास किया जाता हे। मुद्रा का अर्थ है– ''आसन, प्राणायाम एवं बंध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा उच्च आध्यात्मिक शक्ति का जागरण संभव है। मुद्रायें अनेक प्रकार की होती हैं। जैसे– ज्ञानमुद्रा, चिनमुद्रा, शांभवी मुद्रा, योगमुद्रा, काकीमुद्रा, पाशिनी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, इत्यादि। विविध ग्रन्थों में मुद्राओं की संख्या के संबंध में भेद मिलता है। घेरण्ड संहिता में कुल 25 मुद्राओं का वर्णन किया गया है। जिसमें चार प्रकार के बंध, पाँच प्रकार की धारणायें एवं सोलह मुद्राओं का समावेश है, जबकि हठप्रदीपिका में दस–मुद्राओं का विवेचन मिलता है। इस प्रकार घेरण्ड संहिता में योगाभ्यास के क्रम में मुद्रा एवं बन्ध को तृतीय स्थान पर रखा गया है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार मुद्रायें – 25 मुद्रायें

चार बंध	पंचधारणा	सोलह मुद्रायें
1. मूलबंध	1. पार्थिवीधारणा	1.महामुद्रा
2. जालन्धर बंध	2. आम्भसी धारणा	2. नभोमुद्रा
3. उड्डियान बंध	3. आग्नेयी धारणा	3. खेचरी मुद्रा
4. महाबन्ध	4. वायवीय धारणा	4. महाबेध मुद्रा
	5. आकाशी धारणा	5. विपरीत मुद्रा
		6. योनि मुद्रा
		7. वज्रोणि मुद्रा
		8. शक्तिचालिनी
		9. तड़ागी मुद्रा
		10. माण्डुकी मुद्रा
		11. शांभवी मुद्रा
		12. अश्विनी मुद्रा
		13. पाशिनी मुद्रा
		14. काकी मुद्रा
		15. मातडिनी मुद्रा
		16. भुजंगिनी मुद्रा

प्रत्याहार– अगला अभ्यास 'प्रत्याहार' का है, जिसका घेरण्ड संहिता के अनुसार चौथा स्थान है। प्रत्याहार का अभिप्राय है– ''इन्द्रियों को बाह्यविषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाना। प्रत्याहार के निरन्तर अभ्यास से मन की चंचलता समाप्त होकर मानसिक धैर्य की प्राप्ति होती है।

प्राणायाम–'प्राणायाम' हठयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसे महर्षि घेरण्ड ने योगसाधना में पाँचवा स्थान प्रदान किया है। प्राणायाम मात्र श्वांस–प्रवास का व्यायाम नहीं वरन् प्राणमूलक प्रक्रिया है, जिसका मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा नाड़ी–विज्ञान से गहरा संबंध है। वस्तुतः जीवनी शक्ति का नियमन' ही प्राणायाम है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को परिभाषित करते हुये कहा है–

''तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।''

– (पातंजल योग सूत्र 2/49)

अर्थात् ''आसन के स्थिर होने पर श्वास–प्रश्वास की गति का रूकना ही प्राणायाम हैं।

त्रिशिखब्रह्माणोपनिषद के अनुसार–

''निरोधः सर्ववृप्तीनां प्राणायामः।''

अर्थात् ''सभी प्रकार की वृत्तियों के निरोध को प्राणायाम कहा गया है।''

हठप्रदीपिका के अनुसार–

''पापद्वायुः स्थितो देहे तावन्जीवन मुच्चते।
मरण तस्य निस्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।।''

– (हठप्रदीपिका 2/3)

अर्थात् ''जब तक शरीर में वायु विद्यमान है, तब तक ही जीवन कहलाता है। उसका शरीर से निकल जाना ही मरण है। अतः प्राणायाम का अभ्यास करें।

प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियों का मल दूर होकर उनकी शुद्धि हो जाती है तथा शारीरिक स्थूलता कम होकर लाघवता (हल्कापन) एवं स्फूर्ति आती है। प्राणायाम की महिमा का वर्णन करते हुये हठप्रदीपिका में कहा गया है–

''प्राणायामेन युक्तेन,
सर्वरोगक्षयोभवेत्।।''

– (हठप्रदीपिका 2/16)

अर्थात् ''उचित रीति से प्राणायाम का अभ्यास करने से सभी रोगों का नाश होता है।''

''प्राणायाम के द्वारा हल्केपन की प्राप्ति होती है स्थूलता को कम किया जाता है।''

– (घेरण्ड संहिता पृ.सं. 20)

महर्षि पतंजलि के अनुसार–

''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।।– (पातंजल योगसूत्र 2/52)

अर्थात् ''प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश का आवरण हर जाता है या नष्ट हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने चार प्रकार के प्राणायामों की चर्चा की है, जबकि हठप्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता में आठ प्रकार के प्राणायाम बताये गये हैं–

''सूर्यभेदन मुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनी व्यस्ट कुम्भकाः।।'' – (हठप्रदीपिका 2/44)

अर्थात् ''सूर्य भेदन उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुंभक होते हैं।

घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम के भेद – आठ भेद

1. सहित प्राणायाम
2. सूर्य भेदी प्राणायाम
3. उज्जायी प्राणायाम
4. शीतली प्राणायाम
5. भस्त्रिका प्राणायाम
6. भ्रामरी प्राणायाम
7. मूर्च्छा प्राणायाम
8. केवली प्राणायाम

ध्यान– किसी आदर्श लक्ष्य का निर्धारण का उसमें तन्मय हो जाने को ध्यान कहते हैं। सप्तांगों के लिये योगाभ्यास के, क्रम में ध्यान का छठवाँ स्थान है। ध्यान के द्वारा हम मन की गहराई में प्रवेश करते है तथा स्वयं के वास्तविक स्वरूप को पहचानने का प्रयास किया जाता है। इसी को यहाँ पर आकर साक्षात्कार का नाम दिया गया है। आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है– स्वयं का अनुसंधान अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति।

महर्षि पतंजलि ने ध्यान को परिभाषित करते हुये कहा है–

''तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्'' – (पातंजल योगसूत्र 3/2)

अर्थात् ''जहाँ पर धारणा की गई है, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है।''

ध्यान के अभ्यास से वस्तुतः ऊर्जा का क्षरण रोककर मन को एकाग्र किया जाता है। महर्षि घेरण्ड ने ध्यान के तीन प्रकार बताये हैं–

स्थूलं ज्योतिस्थ, सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोवतं ज्योतिस्तेजामयं तथा।
सूक्ष्मं, बिन्दुमयं ब्रहम कुण्डली परदेवता।। – (घेरण्ड संहिता 6/1)

अर्थात् ''स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के भेद से ध्यान तीन प्रकार का होता है। स्थूल ध्यान वह होता है, जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान हो ज्योतिर्मन ध्यान वह है, जिसमें तेजोमय ज्योतिरूपं ब्रहमे का चिन्तन हो तथा सूक्ष्म ध्यान उसे कहते हैं। जिसमें बिन्दुमय ब्रहम कुण्डलिनी शक्ति का चिन्तन किया जाये।

घेरण्ड संहिता के अनुसार ध्यान के भेद – तीन भेदे

स्थूल ध्यान	–	मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान
ज्योति ध्यान	–	तेजोमय ज्योतिरूप ब्रहा का चिन्तन
सूक्ष्म ध्यान	–	बिन्दुमय ब्रहा कुण्डलिनी शक्ति का चिन्तन

समाधि–सप्तांगों की प्राप्ति हेतु किये जाने वाली योग साधनाओं में अंतिम सातवाँ स्थान समाधि का है, जिससे निर्लिप्तता और अन्ततः मुक्ति की प्राप्ति होती है। समाधि की अवस्था में ध्याता एवं ध्येय एक हो जाते है, अद्वैत की अनुभूति होती है। चेतना तुयावस्था में पहुँच जाती है। अन्तजागृति की प्राप्ति होती है, साधक वासनाओं में लिप्त नहीं रहता है। योगों को भी पार कर जाता है। इसी को निर्लिप्त अवस्था कहते हैं।

घेरण्ड संहिता में समाधि के छः भेद बताये गये हैं–

शांभत्या, चैव भ्रमर्या खेचर्च्या योनिमुद्रया।

ध्यानं नादं रसानन्दं लय सिद्धिश्चतु र्विधा।।
पम्चधा भक्ति योगेन मनोमूर्च्छा च षडविधा।
षड्विधोडयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्।।

– (घेरण्ड संहिता 7/5–6)

अर्थात् ''समाधि योग के छः भेद हैं– ध्यान योग, नादयोग, रसानंद योग, लयसिद्धि योग, शक्तियोग और राजयोग। ध्यान योग की समाधि शांभवी मुद्रा से, नादयोग की खेचरी मुद्रा से, रसानंद योग की भ्रमरी मुद्रा से। लयसिद्धियोग की योनिमुद्रा से भक्तियोग, की मनोमूर्च्छा से और राजयोग समाधि कुंभक से सिद्ध होती है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार समाधि के भेद – छः भेद

1. ध्यान योग समाधि
2. नादयोग समाधि
3. रसानंद समाधि
4. लयसिद्धि समाधि
5. भक्तियोग समाधि
6. मनमूर्च्छा समाधि

अभ्यास प्रश्न –

खण्ड 'अ' एवं 'ब' को मिलाइये–

(खण्ड अ)	(खण्ड ब)
षट्कर्म	दृढ़ता
आसन	लाघव
मुद्रा	शोधन
प्रत्याहार	स्थिरता
प्राणायाम	निर्लिप्तता
ध्यान	प्रत्यक्ष
समाधि	धैर्य

2.6 सारांश–

सप्तसाधन का अर्थ–

घटशुद्धि हेतु साधक मैं आवश्यक सात गुण ही सप्तसाधन कहलाते हैं।

सप्तसाधन–शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य,लाघवता, प्रत्यक्ष, निर्लिप्तता

सप्तसाधन हेतु आवश्यक योगाभ्यास

शोधन हेतु षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाँति)

- दृढ़ता हेतु आसन
- स्थिरता हेतु मुद्रा
- धैर्य हेतु प्रत्याहार
- लाघवता हेतु प्राणायाम
- प्रत्यक्ष हेतु ध्यान
- निर्लिप्तता हेतु समाधि

2.7 शब्दावली–

- **घटस्थ योग–** हठयोग अर्थात् स्थूल शरीर पर नियंत्रण के माध्यम से मनोनिग्रह करने की साधना पद्धति। कायासाधन–प्रधान योग पद्धति।
- **घटशुद्धि–** आत्मशुद्धि/शरीर, मन एवं अन्तःकरण की पवित्रता।
- **अन्तःकरण–** बुद्धि, अहंकार, चित्त।
- **सप्तसाधन–** आत्मशुद्धि हेतु आवश्यक सात गुण।
- **निर्लिप्त–** आसक्ति का भाव न होना/रोग से निवृत्त होना/सांसारिकता से विमुखता।
- **षट्कर्म–** शुद्धि की छः क्रियायें। (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाँति)
- **लौलिकी–** नौलि
- **नौलि–** उदरस्थ माँसपेशियों का घुमाना
- **त्राटक–** स्थिर दृष्टि से किसी एक केन्द्र को देखना।
- **प्रत्याहार–**इन्द्रियों को बहिर्मुखी होने से रोककर अन्तर्मुखी बनाना।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(खण्ड अ)	(खण्ड ब)
षट्कर्म	शोधन
आसन	दृढ़ता
मुद्रा	स्थिरता
प्रत्याहार	धैर्य
प्राणायाम	लाघवता
ध्यान	प्रत्यक्ष
समाधि	निर्लिप्तता

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. सूरी, स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला–410403 पुणे, महाराष्ट्र।
2. सरस्वती, निरंजनानंद (1997), घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
3. सरस्वती, विज्ञानानंद (2007), योग विज्ञान। योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश–249192
4. वशिष्ठ संहिता (1984), कैवल्यधाम। श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनबल। पुणे। महाराष्ट्र।
5. ज्योतिर्मयानंद (1999), व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसायटी, लालबाग, लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।
6. रामहर्ष सिंह, (2007), स्वथ्यवृत्त विज्ञान। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
7. सिंह रामहर्ष (1999), योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न–

प्र.1 घटशुद्धि हेतु आवश्यक उपायों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये।
प्र.2. सप्तसाधन के लिये आवश्यक योगाभ्यासों पर प्रकाश डालिये।

इकाई –3 हठयोग सिद्धि के लक्षण, हठयोग की उपयोगिता

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हठयोग सिद्धि के लक्षण
- **3.3.1 हठप्रदीपिका के अनुसार**
- **3.3.2 शिवसंहिता के अनुसार**
- **3.3.3 वशिष्ठ संहिता के अनुसार**
- **3.3.4 योग तत्वों उपनिषद् के अनुसार**
- **3.3.5 घेरण्डसंहिता के अनुसार**

3.4 हठयोग की उपयोगिता
- **3.4.1 षट्कर्मों की महत्ता**
- **3.4.2 आसन का महत्व**
- **3.4.3 मुद्रा एवं बन्ध की उपयोगिता**
- **3.4.4 प्रत्याहार का महत्व**
- **3.4.5 प्राणायाम की उपदेयता**
- **3.4.6 ध्यान की भूमिका**
- **3.4.7 समाधि की महत्ता**

3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों में आप अध्ययन कर चुके हैं कि हठयोग क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? भिन्न–भिन्न योगग्रन्थों में किस प्रकार इसे परिभाषित किया गया है ? किस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हठयोग का प्रतिपादन किया गया तथा उसे उद्देश्य प्राप्ति के लिए धौति–वस्ति इत्यादि षट्कर्मों, आसन, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम इत्यादि का किस प्रकार से अभ्यास किया जाता है। अब जिज्ञासु पाठकों के मन में निम्न प्रश्नों का उत्तर जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि –

- हठयोग के मार्ग में अग्रसर होने पर क्या साधक में किसी प्रकार का परिवर्तन आता है ?
- उसे कौन सी ऋद्धि–सिद्धियों की प्राप्ति होती है ?

- क्या हम हठयोग के द्वारा अपने भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बना सकते है ?

  इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको अपने प्रश्नों का समाधान मिल जायेगा। प्रस्तुत इकाई में हठसिद्धि के लक्षणों एवं हठयोग की उपादेयता पर प्रकाश डाला जाएगा।

  सिद्धि की शिखर पर आरूढ़ होने से पूर्व साधक के शरीर, चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें ही वस्तुतः, ''हठसिद्धि के लक्षण'' कहा जाता है। अगले पृष्ठों में जो वर्णन किया गया है, उसमें अलग–अलग हठयौगिक ग्रन्थों के अनुसार हठसिद्धि के लक्षणों को स्पष्ट किया गया है। साथ ही हम हठयोग के अभ्यासों को व्यवहारिक जीवन में किस प्रकार उपयोगी बना सकते हैं, इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- हठसिद्धि के लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हठयोग की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
- हठयोग को व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार से अपनाया जा सकता है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 हठयोग सिद्धि के लक्षण

''बोओं और काटों'' के सिद्धान्त से प्रायः हम सभी परिचित है अर्थात् प्राणी जिस प्रकार का कर्म रूप बीज डालता है, उसी के अनुसार उसे परिणाम रूप फल की प्राप्ति होती है। यह सिद्धान्त योग साधना पर भी पूर्णतः लागू होता है। शास्त्रोक्त विधि–विधान से अथवा गुरू के निर्देशानुसार जो साधक निरन्तर नियमित रूप से उपयुक्त समय एवं स्थान पर पूर्ण क्षद्धाभाव से योगसाधना करता है, उसे निश्चित रूप से परम लक्ष्य की प्राप्ति भी होती है। योग साधना वस्तुतः रूपान्तरण की पित्त के परिष्कार की साधाना है। जैसे–जैसे साधक इस पथ पर अग्रसर होता है, वैसे–वैसे स्थूल सूक्ष्म एवं कारण स्तर पर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है। जब साधना परिपक्व होकर पल्लवित–पुष्पित होने, लगती है तो योगी के आन्तरिक एंव बाह्य जीवन में क्या–क्या परिवर्तन होते है, कौन से लक्षण दिखाई देते है इसी को ''हठसिद्धि के लक्षण'' कहा जाता है। इस रूपान्तरण की झॉकी साधक के व्यक्तित्व के प्रत्येक आयाम में झलकती है।

हठसिद्धि के लक्षणों का विवेचन विविध हठयौगिक ग्रन्थों के अनुसार निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

3.3.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

हठप्रदीपिका के ''प्राणायाम विधि कथन'' नामक द्वितीय उपदेश के 18वें श्लोक में हठसिद्धि के लक्षणों का वर्णन मिलता है।

हठसिद्धि के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है –

''वयुः कृशत्वं बदने प्रसन्नता
नादस्फटत्वं नपने सुनिर्मले।
अरोगता बिन्दुजयो अग्निदीपनम्

नाड़ी विशुद्धि हठसिद्धि लेखणम्।।''

– हठप्रदीपिका 2/78

अर्थात् शरीर में हलेकापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव, नयनों में तेजस्विता, रोग का अभाव, बिन्दु (आज्ञाचक्र से स्त्रावित होने वाला एक प्रकार का स्रोव) पर नियंत्रण, जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों की विशुद्धता ये सब हठसिद्धि के लक्षण हैं।

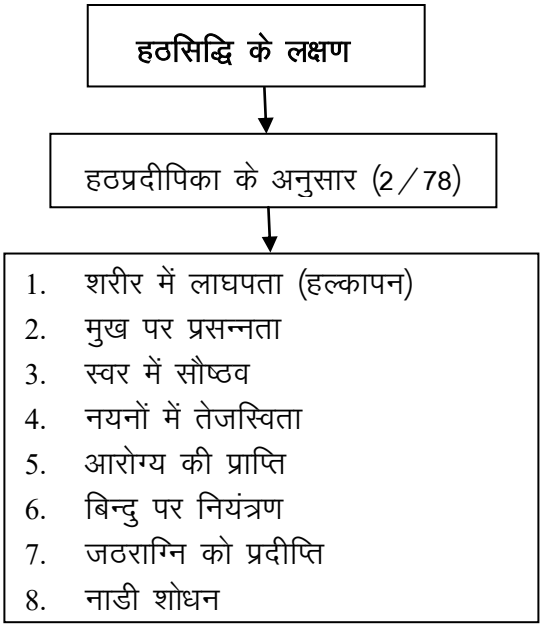

3.3.2 शिवसंहिता के अनुसार

हठप्रदीपिका के समान ही शिवसंहिता में भी हठसिद्धि के लक्षणों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। शिव संहिता के तृतीय अध्याय के तैंतीसवें श्लोक में कहा गया है –

प्रौढ़ वहिनः सुभोजी च सुखी सर्गांडग्सुन्दरः सम्पूर्ण हृदयो योगी सर्वोत्साहबलान्वितः।
जायते योगिनोऽवश्यमेतत्सर्व कलेवरे।।

– (शिवसंहिता 3/33)

अर्थात् योगसाधाक प्रदीप्त जठराग्नि वाला, उचित अर्थात् यौगिक आहार ग्रहण करने वाला, सुखी, सभी प्रकार के बल एवं उत्साह से परिपूर्ण उदांप्त हृदय वाला –ऐसे सभी लक्षण योगी के शरीर में निश्चय ही आ जाते है।

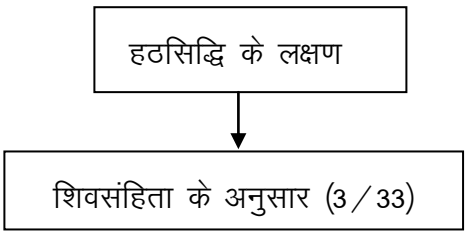

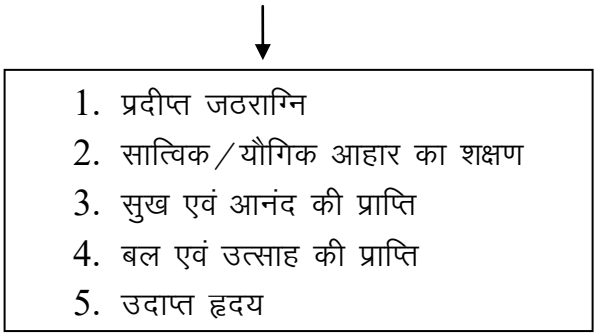

3.3.3 वशिष्ठ संहिता के अनुसार – हठसिद्धि के विविध लक्षणों का विवेचन वशिष्ठसंहिता में भी किया गया है। द्वितीय अध्याय के 68, 69 वें श्लोक में इसका वर्णन मिलता है। हठसिद्धि के लक्षणों को बताते हुए वशिष्ठ संहिता में कहा गया है –

नाड़ी शुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिह्नोपलक्षिताम्
शरीरलघुता दीप्तिर्जठराग्नि विवर्धनम्।।
नादा भित्यक्तिरिप्येतच्चिह्नं तच्छुद्धिसूचकम्।
यावतेतानि सम्पश्येत्तावदेवं समाचरेत्।।

– (वशिष्ठ संहिता 2/68,69)

''इससे अर्थात् हठयोग सिद्ध होने पर नाड़ी शुद्धि सूचक पृथक–पृथक चिन्ह प्राप्त होते है। जैसे शरीर में हल्कापन, कान्ति, जठराग्नि का बढ़ना ओर नाद का आविर्भाव ये सभी पिन्ड चिन्ह दिखाई देने तक इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

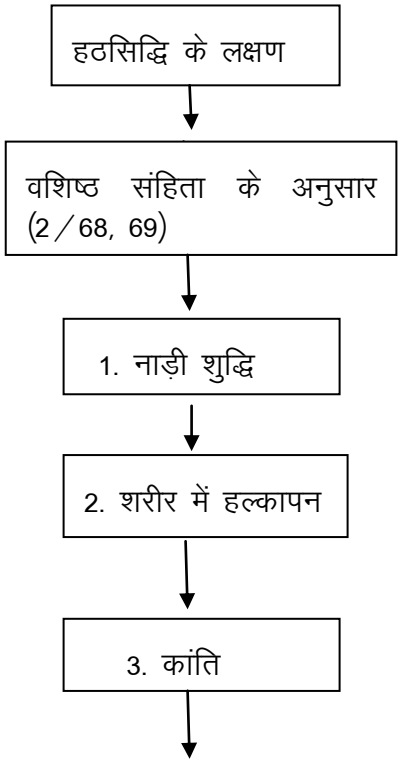

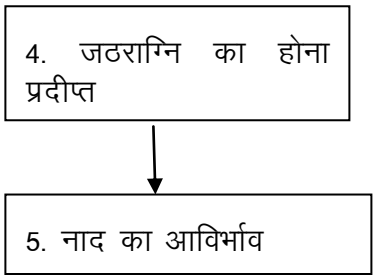

3.3.4 योग तत्वों उपनिषद् के अनुसार – योगतत्वोपनिषद् में हठसिद्धि के लक्षणों की चर्चा करते हुए कहा गया है –

जायन्ते योगीनो देहेतानि पक्ष्याम्य शेषतः
शरीरलघुता दीप्ति जाठराग्नि विवर्धनम्।
कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम्
योग विहनकराहारं वर्जयेद्योगवित्तमः।।

– (योगतत्वोपनिषद्/45–46)

अर्थात् ''ये ऐसे बीज हैं कि शरीर में हल्कापन अनुभव होता है। जठराग्नि बढ़ जाती है, शरीर भी निश्चित रूप से कृश हो जाता हैं, ऐसे समय में योग में बाधा उपस्थित करने वाले आहार परित्याग कर देना चाहिए।

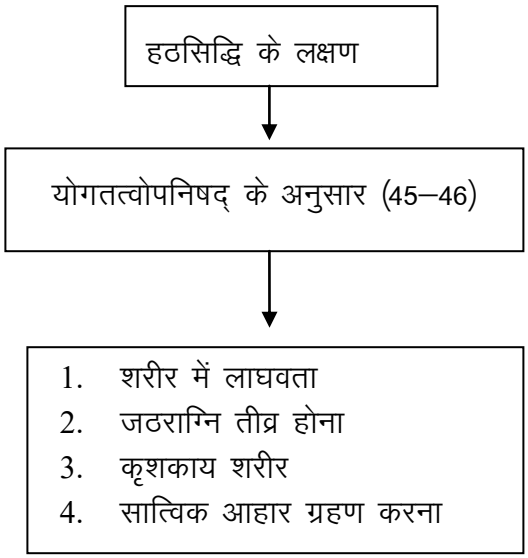

3.3.5 घेरण्डसंहिता के अनुसार – महर्षि घेरण्ड के अनुसार घटस्थ योग के अभ्यास के लिए साधक में निम्न सात गुणों का होना अत्यावश्यक हैं –

i. शोधन
ii. दृढ़ता
iii. स्थैर्य
iv. धैर्य

v. लाहान
vi. प्रत्यक्ष / आत्मसाक्षात्कार
vii. निर्लिप्तता

अर्थात् जैसे–जैसे साधक हठयोग का ऋद्धापूर्वक अभ्यास करता है। वैसे–वैसे उसमें इन गुणों का आविर्भाव (विकास) होने लगता है। इन्हीं सातगुणों को उन्हें ''सप्तसाधन'' नाम दिया है।

वास्तव में यदि देखा जाये तो साधक में धीरे–धीरे इन गुणों का विकसित होना उसके हठसिद्धि के लक्षणों की ओर ही ईशारा करता है। एक साधक किस प्रकार से स्वयं में इन गुणों का विकास कर सकता है। अर्थात् वे कौन–कौन से योगाभ्यास है जिनको करने से हठयोग सिद्ध होता है इसकी चर्चा करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते है –

''षट्कर्म'' शोधनं च आसनेन भवेत् दृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैद प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।

– (घेरण्ड संहिता / 10–11)

अर्थात् ''षटकर्मों (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभॉति) से शरीर शुद्धि, आसनों से दृढ़ता, मुद्रया से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति अर्थात् हल्कापन, ध्यान से आत्मसाक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।''

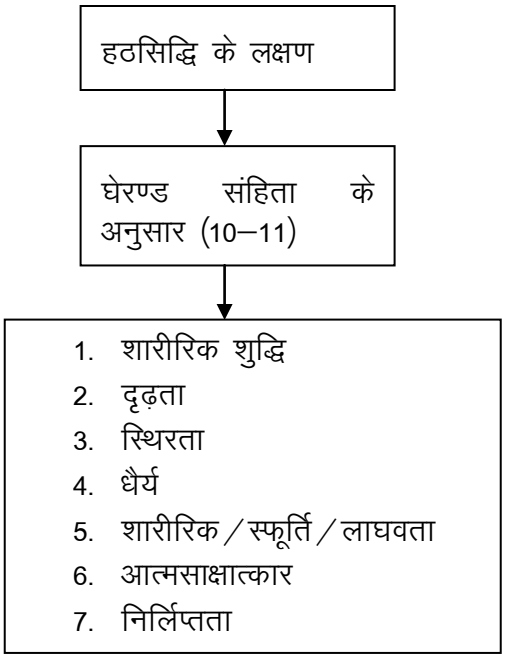

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि योग के अनेक ग्रन्थों में हठसिद्धि के लक्षणों का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रायः सभी ग्रन्थों में इन लक्षणों के विषय में समान बात कही गई है अर्थात् हठयोग सिद्ध होने पर यद्यपि साधक का शरीर पतला हो जाता है किन्तु

उसका मुख्यमण्डल एक अलग प्रकार की आश्प से वैदीत्यमान रहता है। नेत्रों में तेजस्थिता झलकती है। शरीर स्फूर्तिवान रहता है। आलस्य–प्रभाव का नाश होता है, आरोग्य की प्राप्ति होती है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है। शरीर में जो 72,000 नाड़ियॉ पायी जाती है। उनका मलनाश हो जाता है तथा श्रवण होने लगता है अर्थात् साधक ओजस्वी, तेजस्वी, पर्चस्वी बन जाता है, जो स्वयं के कतयण के साथ–साथ जगत के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

अतः हम समझ सकते है कि हठयोग के माध्यम से किस प्रकार हम अपने जीवन का चहुमुॅखी नियोजित विकास करने साधना के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं तथा इस मार्ग को हम कितना तय कर चुके हैं तथा कितना अभी शेष है, हठसिद्धि के लक्षणों द्वारा हम स्वयं ही इसकी परख भी कर सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि हठयोग हमारे लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. हठप्रदीपिका के कौन से उपदेश में हठसिद्धि के लक्षणों का वर्णन किया गया है ?

क. प्रथम ख. द्वितीय ग. तृतीय घ. चतुर्थ

प्रश्न 2. शिवसंहिता के कौन–से अध्याय एवं श्लोक में हठसिद्धि के लक्षण बताये गये है –

क. 4/32 ख. 2/33 ग. 1/32 घ. 3/33

प्रश्न 3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

i. हठयोग के अभ्यास से नाड़ियॉ .....
ii. हठयोग सिद्ध होने पर जठराग्नि..... हो जाती है।
iii. हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश का नाम.....है।

3.4 हठयोग की उपयोगिता

योग की पुण्य परम्परा में ''हठयोग'' का अनिवर्धनीय स्थान है। पतंजलि योग या अष्टांग योग के साथ जिस योग विद्या ने मानव जाति का समग्र विकास किया, उन्हीं में से एक लोकप्रिय एवं अति महत्वपूर्ण नाम है –''हठयोग''।

हठयोग वस्तुतः राजयोग का ही अभिन्न अंग है। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसके माध्यम से न केवल शरीर एवं मन को स्वस्थ बनाया जा सकता है, वरन् इनके (शरीर एवं मन) पारस्परिक संबंधों का भी ठीक प्रकार से समझा जा सकता है अथवा यह कहा जा सकता है कि हठयोग वस्तुतः मनोकाचिक अभ्यासों की एक अद्भुत श्रृखंला प्रस्तुत करता है। इसके निरन्तर एवं नियमित अभ्यास द्वारा आप अपना खोया हुआ स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य प्राप्त कर सकते हैं तथा मानसिक शक्ति प्राप्त कर प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण कर सकते हैं तथा अपने सत्–चित–आनंदमय रूप दिव्य स्वरूप को प्रस्फुटित कर सकते है। हठयोग के दीर्घकालीन श्रद्धापूर्वक अभ्यास से आप अनंत संकल्प शक्ति के धनी बनकर राजयोग के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते है। इसील का उल्लेख करते हुए हठप्रदीपिका के आसन विधि कथन नामक प्रथम उपदेश के प्रथम ही श्लोक में कहा गया है –

''श्री आदिनाथय नमोऽस्तु।
तस्मै येनोपदिष्टा हठयोग विद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोग।
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीय।।''

– (हठप्रदीपिका/1/1)

अर्थात् ''उन सर्वशक्तिमान् आदिनाथ को नमस्कार है, जिन्होंने हठयोग विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों के लिए सीढ़ी के समान है।''

यदि कोई साधक अन्य सभी योगों में कुशलता प्राप्त करना चाहता है तो उसे हठयोग का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि सभी प्रकार की सांसारिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन रूपी साधन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। रोगग्रस्त शरीर एवं मन के द्वारा नहीं। अतः आयुर्वेद में भी कहा गया है –

''धमार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुप्तमम्।।''

अर्थात् पुरूषार्थ चतुस्टथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए शरीर का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है।'' रोगी शरीर के द्वारा किसी भी प्रकार के पुरूषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। कहा भी गया है –

"Sound mind lives in a sound body"

अतः चाहे कोई योगमार्ग को अनुयायी हो, चाहे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहा हो अथवा जिसने सब कुछ त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया हो, चाहे बालक, जवान, वृद्ध हो, स्त्री हो या पुरूष निरोग शरीर एवं स्वच्छ निर्मल मन सभी के लिए अत्यावश्यक है।

संसार में जो शक्ति ग्रह–नक्षत्रों की गति को नियंत्रित करती है, जो प्रकाश, वायु, ऊष्मा, विद्युत, रेडियो–तरंग इत्यादि का परिचालन करती है वह वस्तुतः हमारे भीतर ही विद्यमान है। वस्तुतः इस संसार में जो कुछ भी विद्यमान है। वह हमारे शरीर में भी विद्यमान है कहा भी गया है –

''यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे।।''

आवश्यकता है तो मात्रा उस सोयी हुई शक्ति को जगाने की। हम हठयोग रूपी कुंजी उसे उस प्राणशक्ति के अतुलित भंडार का द्वार खोलकर अपने जीवन को सुख, समृद्धि, शक्ति, शांति, आनंद, साहस एवं प्रभुता से परिपूर्ण कर सकते है।

शक्ति, आनंद, शक्ति रूप प्रकाश से दुःख, भय, रोग और मनोकायिक क्लेश रूप अंधकार को दूर कर सकते हैं।

आज की मानवता जो विविध प्रकार की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक समस्याओं से ग्रस्त है, हठयोग उनके लिए एक वरदान है। अतः योगविद्या के पूर्ण ज्ञाता तथा योग्य, गुरू के मार्गनिर्देशन में प्राणी यदि स्वयं की जीवनशैली को व्यवस्थित बनाकर प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यवस्थित करें तथा शुद्ध, संतुलन, सात्विक आहार–विहार अपनायें तथा कतिपय आसनों एवं प्राणायामों का नियमित अभ्यास करें तो आजीवन निरोग शरीर, स्वस्थ मन एवं दीर्घायु जीवन निःसंदेह प्राप्त कर सकते हैं।

''सार्वभौमिक शांति और समता स्थापित करने के लिए हठयोग एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि बाह्य संसार की शान्ति व्यक्ति के अन्तर्मन की शांति पर निर्भर है। जब तक प्रत्येक ह्रदय में योगाभ्यास के द्वारा क्रोध, द्वेष, लोभ, कामना, अज्ञान और अन्य ऋणात्मक वृत्तियों को समाप्त कर शांति स्थापित नहीं कर दी जाती तब तक संसार में सुख, शांति और क्षमता लाने के सभी बाह्य प्रयास व्यर्थ एवं निरर्थक सिद्ध होंगे।''

– (स्वामी ज्योतिप्रचानंद, 1999)

हठयोग के ग्रन्थों जैसे कि घेरण्ड संहिता में हठयोग साधना के लिए सात प्रकार के योगाभ्यास बताये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं –

i. षट्कर्म

ii. आसन
iii. मुद्रा
iv. प्रत्याहार
v. प्राणायाम
vi. ध्यान
vii. समाधि

इन अभ्यासों को करते हुए जब साधक समाधिस्थ हो जाता है तो यह साधना ''हठयोग की साधना'' कही जाती है। इनके अतिरिक्त यम–नियम, यौगिक आहार को भी हठयोग में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

यदि वर्तमान व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से देखें तो हठयोग के अन्तर्गत रोग एवं रोगी की स्थिति अर्थात् बलाबल के अनुसार विभिन्न प्रकार के षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्राणायाम का नियमित अभ्यास उसे करवाया जाता है, उसके आहार को संतुलित बनाया जाता है, जिससे कि उसे स्वास्थ्य की प्राप्ति हो। इस प्रकार हठयोग के अभ्यासों द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों का नियंत्रण एवं उनकी चिकित्सा की जाती है।

हठयोग की उपादेयता का विवेचन वस्तुतः इसके जो प्रमुख सात अंग बताये गये है, उनके आधार पर निम्नानुसार किया जा सकता है –

3.4.1 षट्कर्मों की महत्ता– हठयोग में षट्कर्म से आशय छः शोधन क्रियाओं – धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभॉति से है। जो शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) तथा त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को संतुलित अर्थात् आवश्यक अनुपात में बनाये रखती है। प्रत्येक शोधन क्रिया शरीर के एक विशिष्ट संस्थान पर अपना प्रभाव डालती है और उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाती है। जैसे –

धौतिक्रिया– धौति क्रिया पाचन संस्थान को शुद्ध करती है। घेरण्ड संहिता में धौति के अनेक प्रकार बताये गये है। श्वासरोग, कफरोग, रक्तविकार, एकर्जी, मोटापा, कब्ज, अग्निमांध, चर्मरोग अर्थात् पेट की खराबी से उत्पन्न होने वाले रोगों में यह क्रिया विशेष रूप से उपयोगी है।

वस्ति क्रिया– वस्ति क्रिया से मलाशय एवं बड़ी आंत की सफाई होती है। इसके अभ्यास से प्लीहा, कब्जरोग, वातरोग इत्यादि विकारों को दूर किया जाता है।

नेति क्रिया– नेति क्रिया एक ई0 एन0 टी0 डॉक्टर की भूमिका का निर्वाह करती है। अर्थात् इसका अभ्यास नाक, कान एवं गले की सफाई के लिए किया जाता है। साइनोसाइटिस, माइग्रेन, सिरदर्द, ऑखों में जलन, दृष्टि कमजोर होना इत्यादि समस्याओं को दूर करने में यह क्रिया विशेष रूप से लाभकारी है।

नौलि क्रिया– 'नौलि' को 'लौलिकी' के नाम से भी जाना जाता है। उदरस्थ अंगों की अभ्यास मालिश तथा बल प्रदान करने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। पाचन एवं प्रजनन संस्थान की समस्याओं के निराकरण में यह क्रिया मुख्य रूप से उपयोगी है।

त्राटक– ऑख एवं तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्कीय संस्थान) से संबंधित विकारों को दूर करने के लिए त्राटक का अभ्यास किया जाता है। इसका निरन्तर अभ्यास करने पर एकाग्रता एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है।

कपाल भॉति– फेफड़ों को बल प्रदान करने वाली अंतिम शोधन क्रिया कपालभॉति है। तंत्रिका तंत्र सम्बद्ध रोग भी इससे दूर होते है। यह कफरोग, चर्मरोग को दूर करती है, वायुनली (श्वॉसनली) की सफाई करती है तथा मधुमेह में भी इसका अभ्यास लाभकारी है। इस प्रकार षट्कर्मों के नियमित अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रहा जा सकता है।

3.4.2 आसन का महत्व– शारीरिक रोगों को दूर कर प्रखर स्वास्थ्य प्राप्त करने के प्रभावशाली साधन के रूप में आसनों का हठयोग में अत्यन्त व्यापक विवेचन मिलता है। स्थिर एंव सुखपूर्वक एक विशेष शारीरिक स्थिति में बैठना ही वस्तुतः आसन है, जिससे कि व्यक्ति देह भाव से ऊपर उठ सके। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर दृढ़ एंव हल्का बन जाता है, आलस्य दूर होकर स्फूर्ति आती है। विभिन्न प्रकार के आसन हमारे शरीर के विभिन्न संस्थानों जैसे कि मांसपेशीय संस्थान, पाचन संस्थान, अन्तः स्त्रावी संस्थान, तंत्रिका संस्थान, रक्त–परिसंचरण संस्थान, प्रजनन संस्थान इत्यादि पर अनुकूल प्रभाव डालते है तथा इन संस्थानों से सम्बद्ध रोगों को दूर कर शरीर को पुष्ट एवं स्वस्थ बनाते है।

''हठयोग के आसनों के अभ्यास से शरीर सुदृढ़, गठित, आकर्षक और पूर्णतः, रोगमुक्त हो जाता है।''

– (स्वामी ज्योतिर्मयानंद, 1999, P–260)

3.4.3 मुद्रा एवं बन्ध की उपयोगिता– हठयोग में मुद्रा–बंध का भी विशेष स्थान है। मुद्राओं के अभ्यास से मन स्थिर होता है।

''मुद्रया स्थिरता चैव।।''

– (घेरण्ड संहिता/10)

मुद्रा के दौरान मन, आत्मा के साथ संयुक्त हो जाता है, चंचलता दूर होती है तथा साधक धारणा एवं ध्यान के अभ्यास में आगे बढ़ता है।

बंध, प्राणशक्ति को शरीर के किसी एक अंग विशेष पर बांध देते है। प्राणवायु के उर्ध्व एवं अपान वायु के नीचे की ओर होने वाले प्राण प्रवाह को नियंत्रित करने में बंध विशेष भूमिका निभाते है।

3.4.4 प्रत्याहार का महत्व– इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने का अभ्यास प्रत्याहार है। इससे व्यक्ति में धैर्य का गुण विकसित होता है अर्थात् वह सुख–दुःख, अच्छी–बुरी प्रत्येक परिस्थिति का डटकर मुकाबला करता है तथा संसार में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को साक्षी भाव से देखता है। कहा भी गया है –

''प्रत्याहारेण धीरता''

– (घेरण्ड संहिता/10)

अर्थात् ''प्रत्याहार से धीरता की प्राप्ति होती है।''

3.4.5 प्राणायाम की उपदेयता – मन एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिए जिस प्राणशक्ति की आवश्यकता होती है, प्राणायाम के अभ्यास से उस शक्ति को संरक्षित किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियॉ शुद्ध होती है। शरीर में हल्कापन आता है। भिन्न–भिन्न रोगों में भिन्न–भिन्न प्रकार के प्राणायामों का अभ्यास करवाया जाता हैं। तनाव, चिन्ता, भय, शंका इत्यादि को दूर कर मन में आशा, उत्साह, उमंग का संचार करने में प्राणायाम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3.4.6 ध्यान की भूमिका – ध्यान, अन्तःकरण की साधना का नाम हैं ध्यान के माध्यम से प्रसुप्त मानसिक शक्तियों का जागरण होता है तथा मानसिक असंतुलन एवं भावनात्मक विक्षोभ से उत्पन्न होने वाले रोग दूर होते हैं। ध्यान जब प्रगाढ़ होता है तो यह संस्कारों तक का नाश करने की सामर्थ्य रखता हैं। योगीजन ध्यान के माध्यम से अपने कर्मसंस्कारों का क्षय करते हैं।

3.4.7 समाधि की महत्ता – हठयोग साधना के अंतिम अंग के रूप में समाधि का विवेचन मिलता है। वस्तुतः समस्त संस्कारों का क्षय होना तथा साधक का आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही समाधि है। इस स्थिति में पहुँचने पर साधक के लिए कोई भी कर्म संस्कार शेष नहीं रहता है। वह निर्लिप्तता की स्थिति को प्राप्त करता है। अन्ततोगत्वा सत्–चित–आनंदमय रूप मुक्ति की प्राप्ति साधक को हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हठयोग के नियमित निरंतर अभ्यास से व्यक्ति यांत्रिक जिन्दगी में बिना एलोपैथी दवाईयों के न केवल अनेक रोगों को दूर कर सकता है। वरन् स्वास्थ्य का संरक्षण भी कर सकता है। वरन् स्वास्थ्य का संरक्षण भी कर सकता है। जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी स्वस्थ होगा और जब व्यक्ति स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन के साथ जिस भी कार्य को करेगा, उसी कार्य में सफलता उसके कदम चूमेगी, संख उसकी प्रतिभा के आगे नतमस्तक होगा।

योगिराज स्वात्मारामजी ने हठयोग के महत्व को निरूपित करते हुए कहा है –

''अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।।''

– (हठप्रदीपिका 1/10)

अर्थात् ''सभी प्रकार के दुःखों से पीड़ित जनों के लिए हठयोग आश्रयरूप मंत्र है। सभी प्रकार के योगाभ्याससियों के लिए हठयोग आधारभूत कच्छप है।''

''हठयोग का मुख्य कार्य है शरीर का शोधन करना और 72,000 नाड़ियों का मलदोष दूर कर उन्हें परिशुद्ध करना। हठयोग पेट की तमाम गड़बड़ियों को दूर करता है। स्नायु तथा मांसपेशियों में शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है। हमारे शरीर के अन्दर जो अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियॉ है, जैसे थायरॉइड, पिट्यूटरी, एड्रीनल इत्यादि को स्वस्थ, निरोग, क्रियाशील एवं आलस्य रहित कार्यक्षमता प्रदान करता है।''

(स्वामी विज्ञानानंद सरस्वती, 2007, P–125)

अभ्यासार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

4. धौति क्रिया ..... को शुद्ध करती है।
5. मुद्रा से..... की प्राप्ति होती है।
6. नेति क्रिया ..... डॉक्टर की तरह कार्य करती है।

3.5 सारांश

हठसिद्धि के लक्षण का अर्थ – योगसाधना के चरम लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व योग के आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व में जो–जो रूपान्तरण होता है अर्थात् परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें हठसिद्धि के लक्षण कहा जाता है।

हठसिद्धि के लक्षण –

- शरीर में हल्कापन
- मुख्यमण्डल पर प्रसन्नता
- सात्विक आहार का भक्षण
- स्वर सौष्ठव
- नेत्रों में तेजस्विता
- आरोग्यता
- जठराग्नि की प्रदीप्ति
- बिन्दु पर नियंत्रण
- नाड़ियों की शुद्धि
- नाद का आविर्भाव
- बल एवं उत्साह की प्राप्ति इत्यादि।

हठयोग के प्रमुख अभ्यास –

i. षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभॉति)
ii. आसन
iii. मुद्रा एवं बंध
iv. प्रत्याहार
v. प्राणायाम
vi. ध्यान
vii. समाधि

हठयोग की उपयोगिता – हठयोग के दीर्घकाल तक आलस्य रहित नियमित अभ्यास से शुद्धता, दृढ़ता, स्थिरता, धीरता, लाघवता, आत्मसाक्षात्कार और अन्ततः निर्लिप्तता की प्राप्ति होती है।

3.6 शब्दावली

- हठसिद्धि – हठयोग साधना का सफल होना
- षटकर्म – छः शोधन क्रियायें
- प्रदीप्ति – जागृत होना या तीव्र होना
- भक्षण – ग्रहरण करना, खाना
- कृश – दुबला–पतला
- नाड़ी – सूक्ष्म नलिकायें, जिससे प्राण शक्ति का प्रवाह होता है।
- प्रसुप्त – सोई हुई अर्थात् जो जागृत नहीं है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. ख
प्रश्न 2. घ
प्रश्न 3.
i. शुद्ध

ii. प्रदीप्त / तीव्र
iii. प्राणायाम विधि कथन

प्रश्न 4. पाचन संस्थान

प्रश्न 5. स्थिरता

प्रश्न 6. ई0 एन0 टी0

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूरी, स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवतयधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला – 410403 (पुणे)
2. सरस्वती, निरंजनानंद (1997) घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
3. सरस्वती विज्ञानानंद (2007), योग विज्ञान। योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश–249192
4. सिंह राम हर्ष (2007) स्वस्थवृत्त–विज्ञान। चौरखंभा सांस्कृतिक प्रतिष्ठान।
5. वशिष्ठ संहिता (1984) कैवल्यधाम श्रीमन्माधवयोग मंदिर समिति, लोनावाला (पन्त) महाराष्ट्र।
6. ज्योतिर्मयानंद (1999) व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसाइटी, लालबाग, लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश।

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. विभिन्न यौगिक तथ्यों के अनुसार हठसिद्धि के लक्षणों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2. सांसारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से हठयोग की उपादेयता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 षट्कर्म का अर्थ एवं परिभाषा, षट्कर्मो का वर्गीकरण

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 षट्कर्मो का अर्थ एवं परिभाषा
4.4 षट्कर्मो का वर्गीकरण
4.4.1 धौति कर्म
4.4.2 वस्ति कर्म
4.4.3 नेति कर्म
4.4.4 लौलिकी कर्म
4.4.5 त्राटक कर्म
4.4.6 कपालभाति कर्म
4.5 सारांश
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, हठयोग शरीर की शुद्धि एवं राजयोग में प्रवेश का एक मार्ग है। हठयोग में योग के सात अंगों का वर्णन किया गया है। जिसे हठयोग के सप्तांग की संज्ञा दी जाती है। इन सात अंगों का प्रथम अंग षट्कर्म है जिसमें शरीर शोधन की छह प्रमुख क्रियाओं का वर्णन किया गया है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर का शोधन होता है। शरीर से मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता दूर होती है। परिणामस्वरूप शरीर स्वस्थ बनता है। आधुनिक काल में जहाँ चारों ओर प्रदूषण की अधिकता बढ़ती जा रही है तथा जिसके कारण सर्दी, जुकाम, सायनस, सिरदर्द, एलर्जी, दमा, त्वचा रोग, कब्ज, अपच, मोटापा जैसे रोग फैलते जा रहे हैं तथा विभिन्न दवाईयों का प्रयोग इन रोगों पर निष्प्रभावी सिद्ध हो रहा है, ऐसे रोगों में षट्कर्मो का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है तथा इन षट्कर्मो का नियमित अभ्यास करने से ये रोग जीवन में आते ही नहीं है। इन षट्कर्मो की उपयोगिता को जानने के बाद अब आपके मन में इनके अध्ययन करने की जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हुई होगी अतः अब हम इन षट्कर्मो के अर्थ, परिभाषा एवं वर्गीकरण पर विचार करते हैं –

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- षट्कर्मो का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- षट्कर्मो के अर्थ को बताने में सक्षम हो सकेंगे।
- षट्कर्मो को वर्गीकरण कर सकेंगे।
- षट्कर्मो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए प्रश्नों के उत्तर को दे सकेंगे।

4.3 षट्कर्म का अर्थ एवं परिभाषा–

प्रिय पाठकों, शाब्दिक अर्थ करने पर षट्कर्म दो शब्दों षट्+कर्म से मिलकर बना है। षट् का अर्थ छह और कर्म का अर्थ क्रियाओं से होता है अर्थात् षट्कर्म के अन्तर्गत छह क्रियाओं का वर्णन आता है। षट्कर्म की ये छह क्रियाएं शरीर शोधन का कार्य करती हैं। ये क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यन्त सहायक होती है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर की स्थूलता नष्ट होती है और कफ दोष की अधिकता भी दूर होती है। षट्कर्म का अभ्यास शरीर की नाड़ियों में प्राण प्रवाहों के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। इसी सामंजस्य से शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि होकर शारीरिक एवं मानसिक संतुलन प्राप्त होता है।

हठयोग के ग्रन्थों घेरण्ड संहिता एवं हठ प्रदीपिका में इन षट्कर्मो पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला गया है। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड षट्कर्मों की सविस्तार व्याख्या करते है। महर्षि घेरण्ड इन षट्कर्मों को हठयोग के प्रथम अंग के रूप में वर्णित करते हुए इनका उपदेश घेरण्ड संहिता नामक ग्रन्थ में करते हैं। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि शरीर का शोधन करने के लिये एवं शरीर की नाड़ियों में प्राण प्रवाहों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने के लिये षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए। इनके अभ्यास से शरीर एवं मन की शुद्धि के साथ–साथ शारीरिक एवं मानसिक संन्तुलन की प्राप्ति होती है।

वात, पित्त, कफ नामक त्रिदोषों की विषमता में भी इन षट्कर्मो की उपयोगिता को दर्शाते हुए महर्षि घेरण्ड उपदेश करते है कि शरीर में स्थित त्रिदोषों में विषमता उत्पन्न होने पर साधक को षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड षट्कर्मो को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।
– (घेरण्ड संहिता 1/2)

अर्थात् धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक एवं कपालभाति इन छह कर्मो का आचरण योगी के लिए आवश्यक है।

हठयोग के दूसरे प्रमुख ग्रन्थ हठ प्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में इन षट्क्रियाओं (षट्कर्म) का उपदेश करते हुए कहा गया है कि शरीर में स्थूलता होने पर साधक को इन षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए। हठप्रदीपिका में शरीर में स्थूलता अथवा वात–पित्त, कफ दोषों की विषमता होने पर भी इन षट्कर्मो के अभ्यास का उपदेश किया गया है तथा शरीर में मुख्य रूप से कफ दोष की विषमता में इन षट्कर्मो का विशेष रूप से अभ्यास का उपदेश है। यहां पर षट्कर्मो के परिभाषित करते हुए कहा गया–

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।

– (ह0 प्र0 2/22)

अर्थात् धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएं कहे गये है। शरीर में मलों की अधिकता होने पर नाड़ियों में प्राण का प्रवाह बाधित हो जाता है साथ ही ये मल शरीर में वात पित्त, कफ नामक त्रिदोषों में विषमता उत्पन्न करते हैं, ऐसी अवस्था में शरीर में व्याधि (रोग) उत्पन्न होते हैं एवं साधक की साधना बाधित होती है। इसके निवारण हेतु इन षट्कर्मो के अभ्यास का उपदेश ऋषियों द्वारा किया गया है। इन षट्कर्मो का अभ्यास करने से शरीर की स्थूलता (भारीपन) दूर होती है एवं शरीर में निर्मलता उत्पन्न होती है। इन ऋषिप्रोक्त षट्कर्मो का वर्गीकरण इस प्रकार है–

4.4 षट्कर्मों का वर्गीकरण–

धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, (नौलि) त्राटक एवं कपालभाति नामक षट्कर्मो का वर्गीकरण इस प्रकार है–

4.4.1 धौति कर्म – धौति कर्म का सामान्य अर्थ धोने से है। यहां पर धौति कर्म से तात्पर्य सम्पूर्ण पाचन तंत्र को धोने के संदर्भ में लिया गया है। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड धौति कर्म को इस प्रकार वर्णित करते है–

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम्।
धौतिं चतुर्विद्यां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम्।।

– (घेरण्ड संहिता 1/13)

अर्थात् अन्तः धौति, दन्त धौति, हृद्ध धौति और मूलशोधन के भेद से धौति कर्म चार प्रकार का होता है। इसके द्वारा योगी जन अपने शरीर को स्वच्छ (स्वस्थ) बनाता है।

(क) अन्तर्धौति – अन्तर्धौति का अर्थ होता है आन्तरिक सफाई। अन्तर्धौति में वायु और जल के प्रयोग से उदर प्रदेश का शोधन होता है।

वातसारं वारिसारं वहिन्सारं बहिष्कृतम्।
घटस्य निर्मलार्थाय "यन्तर्धौतिश्चतुर्विधा।।

– (घे0 सं0 1/14)

धौति कर्म के चार प्रकारों में से प्रथम अन्तर्धौति के भी चार भेद होते हैं – वातसार, वारिसार, वह्निसार, और बहिष्कृत, ये चारों ही शरीर को निर्मल बनाने के लिए ही की जाती है।

1. **वातसार अन्तर्धौति–**

विधि– कौवे की चोंच के समान दोनों ओठों को करके धीरे–धीरे वायु को पीयें। पूर्ण रूप से पान कर लेने पर पेट में उसका परिचालन करें और फिर उस वायु को निकाल दें।

2. **वारिसार अन्तर्धौतिः–**

वारि का अर्थ है जल तथा सार का अर्थ है तत्व, अर्थात् जल तत्व से उदर प्रदेश को धोना।

विधि– वारिसार अन्तर्धौति की विधि का उल्लेख करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मुख से धीरे–धीरे जल पीते हुए कण्ठ तक जल भर लेना है, उसके बाद उदर को चलाकर जल को अधोमार्ग से निकाल देना है। यह वारिसार संज्ञक धौति परम गोपनीय एवं शरीर को

स्वच्छ करने वाली है। इसका प्रयत्न पूर्वक साधन करने वाले योगी को देवताओं के समान शरीर की प्राप्ति होती है।

प्रिय पाठकों वारिसार अन्तर्धौति के समान शंख प्रक्षालन क्रिया का वर्णन भी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस क्रिया में जल पीने के उपरान्त पांच आसनों ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन व उदरार्कषण आसन का अभ्यास करते हुए जल को अधोमार्ग से निकाल देते हैं। यह अभ्यास वारिसार अन्तर्धौति के समान उदर प्रदेश का शोधन करता है।

3. **वह्निसार अथवा अग्निसार अन्तर्धौति**

ऐसी क्रिया जिसके द्वारा जठराग्नि को तीव्र करके पाचन शक्ति को बढ़ाया जाता है, वह्निसार अथवा अग्निसार अन्तर्धौति कहलाती है। इसकी विधि का वर्णन करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते है–

विधि– प्राण वायु को रोककर नाभि को मेरू पृष्ट भाग में लगाये। इससे अग्निसार संज्ञक धौतिकर्म सम्पन्न होता है। यह धौति कर्म अत्यन्त गोपनीय और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

4. **बहिष्कृत अन्तर्धौति**

विधि– कौवे की चोंच के समान ओंठों को करके उनके द्वारा वायु पान करते हुए उदर को भर लें। उस पान की हुई वायु को आधे पहर (डेढ़ घंटा) तक उदर में रोककर परिचालित करते हुए अधोमार्ग से निकाल दें यह परम गोपनीय बहिष्कृत धौति कहलाती है।

(ख) दन्त धौति– दन्तधौति का शाब्दिक अर्थ दातों की सफाई से होता है, लेकिन यहां पर इसे सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश की सफाई करने के अर्थ में वर्णित किया गया है। इसका वर्णन करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रं च कर्णयुग्मयोः।
कपालरन्ध्रं चैते दन्तधौतिर्विधीयते।।

– (घे0 सं0 1/25)

अर्थात् दन्त धौति के पांच भेद है। दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र। ये चार प्रकार की धौतियाँ हुई, इनमें दोनों कानों के रन्ध्रों से होने वाली दो धौति मानी गयी है। इस प्रकार दन्त धौति के पाँच प्रकार हुए।

1. **दन्तमूल धौति –**

विधि– जब तक मैल न छूटे तब तक खादिर के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दातों की जड़ों को माँजना चाहिए। योगियों को यह साधन अपने दातों की रक्षा के लिए नित्य प्रातःकाल अवश्य कराना चाहिए। यह दन्तमूल धौति कहलाती है।

2. **जिह्वामूल धौति अथवा जिह्वाशोधन धौति –**

विधि– तर्जनी, मध्यमा और अनामिका तीनों अंगुलियों को एक साथ मिलकर कंठ में डाल जिह्वा की जड़ को स्वच्छ करना चाहिए। धीरे–धीरे कोमलता से रगड़ने से कफ दोष का निवारण होता है।

3. **कर्णरन्ध्र धौति –**

विधि– तर्जनी और अनामिका को मिलाकर योगीजन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं। इस योग विधि के नित्य अभ्यास से साधक नाद की अनुभूति करने में सक्षम होता है। यह अभ्यास कर्णरन्ध्र धौति कहलाती है।

4. **कपालरन्ध्र धौति –**

विधि– अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों को समेटकर एक कप की आकृति बनाकर उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर कपालरन्ध्र में थपकी देनी चाहिए। यह अभ्यास कपालरन्ध्र धौति कहलाती है।

(ग) हृद्धौति– घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड हृद्धौती के तीन प्रकारों का वर्णन करते हैं–

(i) **दण्ड धौति**

विधि– केले के मृदु भाग के डण्डे अथवा हल्दी के डंडे को हृदय के मध्य बार–बार घुसाकर धीरे–धीरे निकालना चाहिए। फिर कफ, पित्त, क्लेद का मुख द्वार से रेचन करना चाहिए। यह अभ्यास करने से हृदय रोग दूर होते हैं। वर्तमान समय में केले अथवा हल्दी के डण्डे के स्थान पर रबर के मुलायम एवं लचीले पाइप का प्रयोग कर दण्ड धौति का अभ्यास किया जाता है।

(ii) **वमन धौति–** यह क्रिया दो प्रकार से होती है –

(a) **कुंजल क्रिया या कुंजर क्रिया–**

विधि– प्रातःकाल शौचादि से निवृत होकर, एक से डेढ किलो गुनगुने पानी में हल्का सा नमक मिलाकर जितना संभव हो उतना प्रयत्न पूर्वक पानी पीजिए। फिर खड़े होकर 90 डिग्री के बीच झुककर बायें हाथ के बीच की दो अँगुलियों को मुख में डालकर गले का स्पर्श करने पर वमन होकर पानी बाहर निकल जाता है। इस अवस्था में दाहिने हाथ को उदर पर रखते हैं।

(b) **व्याघ्र क्रिया या बाघी क्रिया–**

कुछ जानवर जैसे शेर, बाघ तथा कुत्ता इस क्रिया का प्रायः अभ्यास करते है तथा इस क्रिया के द्वारा ये आमाश्य में स्थित अपाच्य अन्न को बाहर निकाल देते हैं।

विधि– भोजन के बाद पानी को पीकर कण्ठ तक पूरा भर लेते है, कुछ क्षणों के लिए अपनी दृष्टि को ऊपर करते हुए इस पानी को बाहर निकाल देते है। यह व्याघ्र क्रिया कहलाती है।

(ग) वस्त्र धौति–

विधि– इसमें सूती अथवा मलमल का एक 22 फुट लम्बा एवं चार अंगुल चौड़ा वस्त्र होता है। उखडु बैठकर इस वस्त्र के एक सिरे को जिह्वा मूल पर रखते हुए जैसे भोजन को निगलते हैं उसी प्रकार लार के साथ वस्त्र को निगले हुए आठ से दस मिनट के अन्दर पूरे वस्त्र को निगल लेते हैं। तत्पश्चात् वमन के रुप में इस वस्त्र को बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास वस्त्र धौति कहलाता है।

(घ)मूल शोधन– जिस क्रिया से शरीर के मूल भाग की सफाई होती है, उस क्रिया को मूल–शोधन क्रिया कहा गया है। इसमें शरीर के मूल भाग अर्थात् गुदा (बड़ी आँत) की सफाई की जाती है।

विधि– हल्दी की जड़, अथवा मध्यमा अंगुली के द्वारा जल के योग से पुनः–पुनः प्रक्षालन करना मूल शोधन कहलाता है।

प्रिय पाठकों, हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी धौति कर्म के दो प्रकारों का वर्णन करते हैं–

(क) वस्त्रधौति

(ख) गजकरणी

(क) वस्त्र धौति– वस्त्र धौति का अभ्यास उपरोक्त विधिनुसार किया जाता है।

(ख) गजकरणी

विधि – जिस प्रकार हाथी सूंड में पानी भरकर बाहर फेंकता है उसी रुप में इस क्रिया का वर्णन किया गया है। इस अभ्यास हेतु हल्के गर्म अथवा गुनगुने पानी में हल्का सा नमक मिलाकर यत्नपूर्वक अधिक से अधिक पानी पीते है, तत्पश्चात् अंगुलियों को बिना मुख में डाले फव्वारे की तरह इस जल को धारा प्रवाह के रुप में बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास गजकरणी कहलाता है।

4.4.2 वस्ति कर्म– षट्कर्म की दूसरी क्रिया वस्ति कर्म है। जिसमें बड़ी आँत के शोधन का वर्णन है। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड इसके दो भेदों का वर्णन करते हुए कहते हैं –

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्ति च द्विविधौ स्मृतौ।
जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदा क्षितौ।
– (घे.सं. 1/45)

अर्थात् वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है– जल वस्ति और शुष्क वस्ति। जल वस्ति का अभ्यास जल में तथा शुष्क वस्ति का अभ्यास भूमि पर किया जाता है।

(क) जलवस्ति–

विधि– इसके अभ्यास के लिए एक बड़े टब में अथवा नाभि तक गहरे जल (स्वच्छ) से भरे किसी स्थान पर उत्कट आसन में खड़े हो जाते हैं। जल में खडे होकर गुदा द्वार के संकुचन एवं प्रसारण की क्रिया करते हैं। जब श्वास लेते है तब गुदा द्वार को अन्दर की ओर खींचते है और जब श्वास छोड़ते है तब गुदा द्वार को ढीला छोड़ते है। यह अभ्यास जल वस्ति कहलाता है। इसके लिए यदि बहता हुआ जल हो तो वह अधिक उपयुक्त

रहता है। संकुचन की क्रिया से जल आँतों में प्रविष्ट होकर आँतों में चिपके सूखे मल को भी शरीर से बाहर निकाल देता है। जब पानी अन्दर चला जाता है तब नौलि संचालन क्रिया भी की जा सकती है।

(ख) शुष्क वस्ति अथवा पवन वस्ति–

विधि– पवन वस्ति का अभ्यास करने के लिए जमीन पर पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर अश्विनी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। यहां पर पश्चिमोत्तान आसन में दोनों पैरों के पंजों के मध्य 1 फुट की दूरी रखकर गुदा द्वार का आंकुचन एवं प्रसारण करते है। श्वास की स्थिति पूर्ववत् ही रखते हैं अर्थात् श्वास भरते समय आंकुचन क्रिया एवं श्वास छोड़ते समय प्रसारण किया करते हैं। यह अभ्यास पवन वस्ति कहलाता है।

4.4.3 नेति कर्म– षट्कर्मों में शुद्धिकरण की तीसरी क्रिया के रुप में नेति कर्म का वर्णन किया गया है। यह अभ्यास सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश का शोधन करता है। नेति कर्म के संदर्भ में महर्षि घेरण्ड लिखते हैं –

विस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखात्रिर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम्।।

– (घे.सं. 1/50)

अर्थात् आधा हाथ लम्बा डोरा लेकर नासिका में घुसाएं और मुख से बाहर निकाल दें, यह नेति कर्म कहलाता है।

प्रिय पाठकों ऊपर वर्णित सूत्रनेति क्रिया का अभ्यास करने से पूर्व जल नेति क्रिया का अभ्यास भी किया जा सकता है। इसकी विधि इस प्रकार है–

जल नेति–

विधि– जल नेति के लिये एक विशेष आकार का लोटा बनाया जाता है। इस लोटे में गुनगुना एवं नमकीन जल भरकर लोटे की नली को दाँयी नासिका में लगाकर बाँयी नासिका को थोड़ा नीचे की ओर रखते है। मुख को थोड़ा खोलकर श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया मुख से ही करते हैं। ऐसा करने पर जल स्वतः ही बाँयी नासिका से बाहर आने लगता है। इसी प्रकार दूसरी नासिका से भी प्रकार अभ्यास करते हैं।

नेति के लिए प्रातः काल का समय अधिक उपयुक्त होता है किन्तु रोग होने की स्थिति में इसका अभ्यास दोनों समय (प्रातः काल व सायं काल) भी किया जा सकता है।

सूत्रनेति

विधि– यह सूत की बनी हुई एक रस्सी होती है। जिसे सूत्रनेति कहा जाता है। सूत्रनेति को नासिक में डालने से पूर्व जल में भिगोते हैं। अब सूत्रनेति को थोड़ा वृत्ताकार मोड़कर नासिक में प्रवेश कराते हैं। नासिक में धीरे– धीरे आगे बढ़ती हुई सूत्रनेति मुख में आ जाती है। मुख में आने पर हाथ की सहायता से इसके एक सिरे को पकड़कर बाहर निकाल लेते हैं। अब दोनों हाथों से सूत्रनेति के दोनों सिरों को पकड़कर नासिक एवं मुख में इसका दोहन व चालन करते हैं। चालन करने के पश्चात इसको मुख से बाहर निकालते हैं।

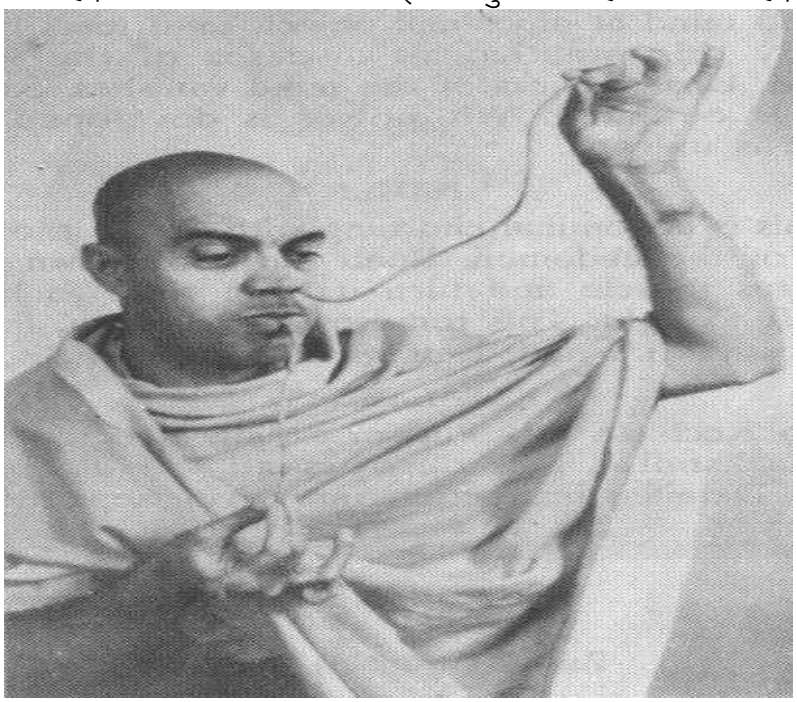

4.4.4 लौलिकी कर्म– लौलिकी शब्द की व्युत्पत्ति "लोल" शब्द से हुई है, इसका अर्थ उत्तेजना पूर्वक इधर–उधर घुमना होता है। यहां इसका अर्थ पेट की मांसपेशियों एवं उससे सम्बन्धित मांसपेशियों को संकुचित कर घुमने से है। इससे पाचन संस्थान के सभी अंग, मांसपेशियां एवं स्नायु उत्तेजना शक्ति को प्राप्त कर ज्यादा सक्रिय होते हैं। इस क्रिया का यौगिक नाम नौलि क्रिया है। इस क्रिया पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

अमन्दवेगेन तन्दं भ्रमायेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोत्रिहन्तीह देहानलविवद्धनम्
– (घे.सं. 1/52)

अर्थात् उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त वेगपूर्वक घुमाना चाहिए। यह लौकिकी, अर्थात् नौलि कर्म सब रोगों का नाशक और जठरानल का उद्दीपक है। इस क्रिया से उदर की मांसपेशियां मजबूत होती हैं एवं पाचन संस्थान की आन्तरिक क्रियाएं अच्छी प्रकार अपना कार्य करती हैं। इस क्रिया को करने से उदर की मांसपेशियों को पर्याप्त शक्ति मिलती है और इन मांसपेशियों के कारण उन सभी क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण रहता है

जिनके द्वारा आंतरिक अंग क्रियाशील रहते हैं अर्थात् यह अभ्यास आन्तरिक अंगों को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाता है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार यह नौलि क्रिया चार प्रकार की होती है–

(क). मध्यमा नौलि

विधि – इसके लिए पैरों में एक से डेढ़ फीट का अन्तर रखते हुए, घुटनों के ऊपर हाथ रखते हुए खड़े हो जाते हैं। हाथों से घुटनों को दबाते हुए तथा दृष्टि को सामने भूमि पर रखते हैं। अब श्वास बाहर निकालते हुए पेट को पहले पूरा अन्दर सिकोड़ते हैं फिर उदर के मध्य नाभि वाले भाग को आगे की ओर ढीला छोड़कर सामने की ओर निकालते हैं। जब श्वास की इच्छा हो तो श्वास को अन्दर भर कर पेट को ढीला छोड़ देते हैं। इसी प्रकार पुनः अभ्यास को दोहराते हैं।

(ख). वाम नौलि

विधि – इसमें भी पैरों पर खड़े होकर हाथों से घुटनों को दबाते हुए पहले मध्यमा नौलि करते हैं। अब बाई ओर थोड़ा झुकते हुए, बांए हाथ पर दबाव डालते हैं। इससे उदर की बड़ी मांसपेशियां बांयी ओर निकल जाती हैं। इस प्रक्रिया में दांये हिस्से को ढीला रखना चाहिए।

(ग). दक्षिण नौलि

विधि – इसमें भी पूर्व की भांति ही स्थिति ग्रहण करते हैं। दृष्टि सामने भूमि पर रखते हैं। अब दांई ओर थोड़ा झुकते हुए, दांए हाथ पर दबाव डालते हैं। दांयी ओर दबाव पड़ने पर उदर की बड़ी मांसपेशियां दांयी ओर आगे की ओर निकल आती है। मध्यम नौलि में पूर्ण दक्षता प्राप्त होने पर ही वाम नौलिक एवं दक्षिण नौलि का अभ्यास करना चाहिए।

(घ). भ्रमर नौलि

विधि – भ्रमर नौलि करने के लिए पहले मध्यम नौलि करते हैं इसके बाद वाम नौलि करते हैं पुनः उड्डियान बन्ध लगाते हैं। इसके बाद दक्षिण नौलि का अभ्यास करते हैं अन्त में फिर मध्यम नौलि करते हैं। इस प्रकार यह पेट की मांसपेशियों को घुमाने की प्रक्रिया हुई। यह सारी क्रिया जब एक क्रम से की जाती है तब इसे भ्रमर नौली अथवा नौलि संचालन कहा जाता है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी नौलि कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं–

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैःप्रचक्ष्यते।।– (हठप्रदीपिका 2/34)

अर्थात् कन्धे को थोड़ा आगे की ओर झुकाकर तीव्र गति वाले भंवर के समान उदर को दाहिने से बांये ओर बांये से दांये घुमाना चाहिये। सिद्धों के द्वारा इसे ही नौलि कहा जाता है।

4.4.5 त्राटक कर्म– त्राटक षट्कर्म की पांचवी प्रमुख क्रिया है, जिसका अभ्यास शरीर शोधन के साथ–साथ मन की एकाग्रता को बढ़ाने वाला होता है। हठयोग में त्राटक को एक शुद्धिकरण क्रिया के रूप में देखा गया है जिसका उपयोग मस्तिष्क को शांत एवं निर्मल बनाने के लिए किया जाता है। त्राटक कर्म पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड लिखते हैं –

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
पतन्ति यावदश्रूणि त्राटंक प्राच्यते बुधैः।। (घे.सं. 1/53)

अर्थात् निमेष–उन्मेष को रोककर जब तक आंसू न गिरने लगे, तब तक किसी भी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगाकर लगातार देखते रहने को त्राटक कहते हैं। इसके

अभ्यास से नेत्रों के दोषों का निवारण होकर दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी त्राटक कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं –

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।''– (हठप्रदीपिका 2/32)

अर्थात् स्थिरदृष्टि से किसी सूक्ष्म लक्ष्य को एकाग्र होकर तब तक देखना चाहिए जबतक कि आंख से आंसू बाहर न आ जाये, आचार्यों ने इसे त्राटक कहा है।

विधि– त्राटक के अभ्यास के लिए किसी भी ध्यानात्मक आसन जैसे पद्मासन अथवा सिद्धासन आदि में बैठककर किसी भी ऐसी वस्तु जो आंखों से तीन–चार फुट की दूरी पर रखी हो, पर दृष्टि को एकाग्र करते हैं। वस्तु का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह वस्तु मन में एकाग्रता बढ़ाने वाली एवं शांति प्रदान करने वाली होनी चाहिए। बहता हुआ जल, खिला हुआ फूल चन्द्रमा, जलते दीपक की लौ आदि पर दृष्टि की एकाग्रता बनाई जा सकती है। बिना पलक झपकाये हुए इन्हें तब तक देखना चाहिए, जब तक कि अश्रुपात न होने लगे। तत्पश्चात् आखें बंद कर उस वस्तु का ध्यान करना चाहिए।

4.4.6 कपालभाति कर्म– प्रिय पाठकों यौगिक ग्रन्थों में षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है। यह अभ्यास शरीरस्थ कोषों को शुद्ध बनाता है। कपालभाति कर्म के अभ्यास से प्राणमय कोष शुद्ध होता है। कपालभाति शब्द कपाल और भाति से मिलकर बना है, कपाल का अर्थ है ललाट अथवा मस्तक और भाति का अर्थ है दीप्ति अथवा चेतना । अर्थात् वह क्रिया जिसके अभ्यास से शीर्ष प्रदेश की चेतना में वृद्धि होती है, कपालभाति कहलाता है। इस क्रिया में रेचक करते वायु को धौंकनी की तरह बाहर फेंकना पड़ता है, और सामान्य गति से वायु को शरीर के भीतर प्रवेश कराना पड़ता है कपालभाति पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड लिखते हैं–

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीतक्रमेण विशेषतः।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्।।– (घे.सं. 1/55)

अर्थात् वातक्रम कपालभाति, व्युतक्रम कपालभाति ओर शीतक्रम कपालभाति के भेद से कपालभाति तीन प्रकार की होती हैं। इसका अभ्यास करने से कफ से उत्पन्न दोषों का निवारण होता है।

(क). वातक्रम कपालभाति

विधि – इसमें सबसे पहले कमर एवं गर्दन को सीधी करते हुए किसी भी स्थिर आसन जैसे पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठते हैं। अब दांए हाथ की प्राणयाम मुद्रा बनाते हुए बाई नासिक या इडा नाड़ी से श्वास भरते हैं और दाहिने नासिका अर्थात् पिंगला नाड़ी से श्वास छोड़ते हैं। फिर दाई नासिका से श्वास भरते हैं और बांई नासिका से छोड़ते हैं। रेचक एवं पूरक की क्रियाओं की गति तेज नहीं होनी चाहिए।

यह अभ्यास पाचन अंगों को उत्प्रेरित कर उनकी मालिश करता एवं उन्हें शक्तिशाली बनाता है। मस्तिष्क का अग्र भाग रक्त की अधिक मात्रा से शुद्ध होकर अधिक सक्रिय होता है सूक्ष्म स्तर पर प्राण प्रवाह मस्तिष्क के इस क्षेत्र में होता है। यह अभ्यास फेफड़ों की शुद्धि का उनका विस्तार करता एवं उनकी क्षमता को बढ़ता है।

(ख). व्युत्क्रम कपालभाति

विधि – व्युत्क्रम कपालभाति में जल का प्रयोग किया जाता है। नासिक के दोनों छिद्रों से जल को खींचकर मुख से निकाल दिया जाता है और मुख से खींचकर नासिक से निकालते हैं।यह क्रिया व्युत्क्रम कपालभाति कहलाती है। घेरण्ड संहिता में कहा गया है–

नासाभ्याम जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत्।
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेषमादोषं निवारयेत्।।

अर्थात् नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा जल खींचे और मुख से निकाल दें तथा मुख से जल खींचकर नासिका से निकाल दें। यह व्युत्क्रम कपालभाति कफज दोषों का निवारण करती है। यह अभ्यास नेति के अभ्यास के समान नासिका मार्ग को स्वच्छ बनाता है एवं कफज दोषों का निवारण करता है।

(ग). शीतक्रम कपालभाति–

विधि – शीत्कार करता हुआ साधक मुख से जल ग्रहण करता है और इस जल को नासिका के द्वारा बाहर निकाल लेता है यह क्रिया शीतक्रम कपालभाति कहलाती है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी कपालभाति कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं–

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।।

– (हठप्रदीपिका 2/36)

अर्थात् लोहार की धौंकनी के समान शीघ्रता से रेचक पूरक करने से कपालभाति होती है। यह कफ रोगों को नष्ट करने वाली है।

प्रिय पाठकों इस प्रकार हठयोग के ग्रन्थों में षट्कर्मों का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

क. महर्षि घेरण्ड षट्कर्म को हठयोग के .....अंग के रूप में वर्णित करते हैं।
ख. उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त वेगपूर्वक घुमाना .....किया है।
ग. वारिसार अन्तर्धौति के समान .....किया का वर्णन भी ग्रन्थों में प्राप्त होता है।
घ. षट्कर्मों में शुद्धिकरण की तीसरी क्रिया के रुप में ..... का वर्णन किया गया है।
च. घेरण्ड संहिता के अनुसार कपालभाति के ..... प्रकार होते हैं।

(2) बहु विकल्पीय प्रश्न–

क. षट्कर्म में कितनी क्रियाओं का वर्णन आता है –

(a) चार (b) छह
(c) आठ (d) दस

ख. धौति क्रिया मुख्य रूप से किस तंत्र के शोधन से सम्बन्धित है–

(a) श्वसन तंत्र (b) पाचन तंत्र
(c) उत्सर्जन तंत्र (d) तंत्रिका तंत्र

ग. वस्ति क्रिया में किस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है–

(a) ज्ञान मुद्रा (b) महबंध मुद्रा
(c) अश्विनी मुद्रा (d) विपरित करणी मुद्रा

घ. महर्षि घेरण्ड के अनुसार यह नौलि क्रिया कितने प्रकार की होती है?

(a) दो (b) चार

(c) पांच (d) छह

ङ. मुख से जल ग्रहण कर नासिका से निकालना कौन सी क्रिया कहलाता है।

(a) वातक्रम कपालभाति (b) व्युत्क्रम कपालभाति

(c) शीतक्रम कपालभाति (d) जल नेति

4.5 सारांशः–

उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि हठयोग के ग्रन्थों में शरीर शोधनार्थ धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाति नामक छह क्रियाओं का वर्णन किया गया है जिन्हें सम्मिलित रुप से षट्कर्म की संज्ञा दी गयी है। शरीर में वात–पित्त–कफ दोषों की विषमता को दूर करने के लिये ये षट्कर्म अत्यन्त लाभकारी होते हैं। इन क्रियाओं के अभ्यास से शरीर की स्थूलता दूर होती है एवं शरीर लघुता (हल्कापन) को प्राप्त होता है। इन षट्कर्मों को घेरण्ड संहिता एवं हठप्रदीपिका नामक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक वर्गीकरणे करते हुए समझाया गया है। प्रथम कर्म के रुप में धौतिकर्म का वर्णन किया गया है, यह कर्म वायु, जल एवं वस्त्र द्वारा उदर प्रदेश का शोधन करता है। द्वितीय कर्म के रुप में वस्ति कर्म बड़ी आंत को स्वच्छ बनाता है। षट्कर्म की तीसरी क्रिया के रुप में नेति कर्म का उल्लेख किया गया है। इस क्रिया का अभ्यास शीर्ष प्रदेश की सफाई करता है। षट्कर्म की चौथी क्रिया के रुप में वर्णित नौलि कर्म जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। त्राटक कर्म षट्कर्म की पांचवी क्रिया है जिसका अभ्यास मानसिक एकाग्रता उत्पन्न करता है तथा षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है, यह कर्म वायु एवं जल के द्वारा शरीर शोधन का कार्य करता है।

4.6 शब्दावली

- सामंजस्य = सन्तुलन
- परासरण = फैलाना
- संकुचन = सिकोड़ना
- उदर प्रदेश = आमाशय अथवा पेट
- विकार = दोष
- निष्प्रभावी = प्रभाव रहित
- रेचक = श्वास छोड़ना
- पूरक = श्वास भरना
- मेरू = रीढ़ अथवा कमर
- प्रक्षालन = धोना

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. प्रथम	क. b
ख. नौलि	ख. b
ग. शंख प्रक्षालन	ग. c
घ. नेति कर्म	घ. b

ड. तीन ड. c

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. हठप्रदीपिका–स्वामी दिगम्बर जी, डा. पीताम्बर झा, कैवल्यधाम लोनावाला।
2. घेरण्ड सहिता–स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार।
3. स्वस्थवृत्त विज्ञान–प्रो. रामहर्ष सिंह चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न–

1. हठयोग में वर्णित षटकर्मों की सविस्तार व्याख्या किजिए।
2. षटकर्मों को परिभाषित करते हुए वर्गीकरत किजिए।

इकाई 5 – षट्कर्मो का उद्देश्य, षट्कर्मो का फल

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 षट्कर्मो का उद्देश्य
- 5.3.1 धौति कर्म का उद्देश्य
- 5.3.2 वस्ति कर्म का उद्देश्य
- 5.3.3 नेति कर्म का उद्देश्य
- 5.3.4 लौलिकी कर्म का उद्देश्य
- 5.3.5 त्राटक कर्म का उद्देश्य
- 5.3.6 कपालभाति कर्म

5.4 षट्कर्मो का फल
- 5.4.1 धौति कर्म का फल
- 5.4.2 वस्ति कर्म का फल
- 5.4.3 नेति कर्म का फल
- 5.4.4 लौलिकी कर्म का फल
- 5.4.5 त्राटक कर्म का फल
- 5.4.6 कपालभाति कर्म का फल

5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों पूर्व की इकाई में आपने षट्कर्मो का ज्ञान प्राप्त किया। षट्कर्म हठयोग की साधना का प्रथम अंग है। इन षट्कर्मो के अभ्यास से योगसाधक अपनी साधना प्रारम्भ करता है। षट्कर्म के अन्तर्गत धौति, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक एवं कपालभाति नामक छह

क्रियाओं का वर्णन आता है। ये क्रियाएं मानव शरीर का शोधन करती हुई कायाकल्प करती है। षट्कर्म की इन क्रियाओं को करने का उद्देश्य क्या है यह प्रश्न निश्चित रूप से आपके मन में उपस्थित हुआ होगा तथा इन षट्कर्मो के अभ्यास से क्या–क्या फल प्राप्त होते हैं। यह जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इस इकाई से आपको इन प्रश्नों के उत्तर अवश्य प्राप्त होगें, साथ ही आप षट्कर्मो के फलों के विषय में ज्ञान अर्जित करेंगे।
आधुनिक समय में प्रदूषण चारों ओर विकट रूप में फैला है इसके परिणाम स्वरूप मानव शरीर में गन्दगियाँ एकत्र होती है तथा वात, पित्त, कफ दोष में विषमताएं उत्पन्न होती है जो आगे चलकर रोग का कारण बनती है। षट्कर्म शरीर को प्रदूषण के कुप्रभाव से बचने में सक्षम बनाता है तथा इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर में एकग्र गन्दगियां बाहर निकलती है, शरीर शुद्ध एवं स्वच्छ बनता है तथा वात–पित्त, कफ दोष सम अवस्था को प्राप्त होते हैं। वात–पित्त व कफ दोष की विषमता से उत्पन्न होने वाले रोगों से शरीर बचा रहता हैं शरीर के साथ–साथ ये षट्कर्म मानसिक स्तर पर भी स्वस्थ बनाते है। इन षट्कर्मो के उद्देश्य एवं फलों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

5.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- षट्कर्मो के उद्देश्यों को भलिभाँति समझा सकेंगे।
- षट्कर्मो के फलों का विस्तृत रूप से विवेचन कर सकेंगे।
- धौति कर्म के लाभों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वस्ति कर्म के शरीर पर प्रभावों का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- नेति कर्म के फल का वर्णन कर सकेंगे।
- नौली कर्म के लाभ जान सकेंगे।
- त्राटक कर्म की उपयोगिता का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- कपालभाति कर्म के उद्देश्य एवं फल का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

5.3 षट्कर्मो का उद्देश्य–

षट्कर्मो के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए स्वामी स्वात्माराम योगी हठप्रदीपिका में लिखते है–

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्व षट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।। – *(ह0प्र0 2/21)*

अर्थात् जिसके शरीर में मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता हो उसे पहले षट्कर्म के द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि शरीर के मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता को दूर करना एवं शरीर का शोधन करना ही षट्कर्मो का मुख्य उद्देश्य है। मेद की अधिकता शरीर में भारीपन एवं जडता उत्पन्न करती है जबकि इस मेद की सन्तुलित अवस्था शरीर में हल्कापन एवं निरोगिता उत्पन्न करने के साथ साथ शरीर को बलवान बनाती है। शरीर में श्लेष्मा की अधिकता कफ दोष को असन्तुलित करती है तथा कफ विकार उत्पन्न करती है। षट्कर्मो का उद्देश्य शरीरस्थ मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता को दूर कर शरीर को शुद्ध, स्वच्छ एवं समदोष युक्त बनाना होता है।

षट्कर्म की छह क्रियाएं निम्न उद्देश्यों के लिए की जाती है–

5.3.1 धौति कर्म का उद्देश्य– धौति कर्म को घेरण्ड संहिता में निम्न चार भागों में विभक्त किया गया है–

क. अन्तर्धौति
ख. दन्त धौति
ग. हृद धौति
घ. मूल शोधन

क. अन्तर्धौति का उद्देश्य– अन्तर्धौति का उद्देश्य वायु एवं जल के द्वारा उदर प्रदेश का शोधन करना होता है। धौति के इस वर्ग का अभ्यास करने से कफ दोष एवं पित्त दोष का शमन होता है अर्थात् ये दोष अपनी साम्यावस्था को प्राप्त होते हैं। उदर प्रदेश की सफाई कर जठराग्नि को प्रदिप्त करना अन्तर्धौति का मुख्य उद्देश्य होता है। साथ–साथ इस धौति कर्म का उद्देश्य सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन करना होता है।

ख.दन्तधौति का उद्देश्य– दन्तधौति का उद्देश्य सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश का शोधन करना होता है। दाँतों की सफाई करना, जिह्वा की सफाई करना, कानों को मल रहित बनाना एवं कपालरन्ध्र का शोधन करना दन्त धौति का उद्देश्य होता है।

प्रिय पाठकों, हमारे शरीर एवं मन का नियंत्रण शीर्ष प्रदेश से ही होता है, दन्तधौति का उद्देश्य इस शीर्ष प्रदेश को मल रहित, स्वच्छ एवं निर्मल बनाना होता है। यह अभ्यास दातों, जिह्वा, कानों एवं कपाल रन्ध्र को शुद्ध बनाते हैं। दन्तधौति का अभ्यास करने से साधक के सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश का शोधन होता है।

ग.हृद धौति का उद्देश्य– हृदधौति का उद्देश्य दण्ड, जल एवं वस्त्र के द्वारा उदर प्रदेश को स्वच्छ बनाना होता है। दण्ड धौति के अभ्यास में एक दण्ड (आधुनिक समय में रबर के पाइप) की सहायता से अशुद्ध कफ, पित्त एवं अन्य गन्दगियों को बाहर निकाला जाता है इसका उद्देश्य उदर प्रदेश की गन्दगियों को बाहर निकालना है। वमन क्रिया का उद्देश्य आमाशय में स्थित विकृत पित्त एवं अपचित अन्न को बाहर निकालना होता है। इस क्रिया का उद्देश्य शरीरस्थ वायु को सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित करना होता है। यह अभ्यास उदर में स्थित अपना वायु को सम बनाने के उद्देश्य से किया जाता है।

वस्त्र धौति का उद्देश्य वस्त्र के द्वारा कण्ठ से आमाशय तक का शोधन करना होता है। वस्त्र धौति का उद्देश्य आहार नलिका एवं आमाश्य को स्वच्छ बनाना होता है। इस क्रिया के अभ्यास से ग्रन्थियों को भी सक्रिय बनाया जाता है। लार ग्रन्थि से लेकर पाचन तंत्र की समस्त पाचक ग्रन्थियों को इस क्रिया के द्वारा उत्तेजित किया जाता है। वस्त्र धौति के द्वारा श्वसन तंत्र को भी स्वच्छ बनाया जाता है एवं श्वसन तंत्र में स्थित विकृत कफ को बाहर निकाला जाता है। इस अभ्यास का उद्देश्य कण्ठ में स्थित कफ दोष को सम बनाना होता है।

घ. मूल शोधन का उद्देश्य– मूल शोधन क्रिया का उद्देश्य शरीर के मूल भाग का शोधन करना होता है। इस क्रिया का उद्देश्य अपान वायु को सुव्यवस्थित करना होता है। आंतों में स्थित मल पदार्थो को शरीर से भलीभाँति बाहर निकालना भी इस कर्म का उद्देश्य होता है।

5.3.2 वस्ति कर्म का उद्देश्य– षट्कर्म की दूसरी क्रिया वस्ति कर्म को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया गया है–

क. जलवस्ति
ख. शुष्क वस्ति/पवन वस्ति/स्थल वस्ति

क. जल वस्ति का उद्देश्य– जल वस्ति का उद्देश्य जल के द्वारा बड़ी आँत का शोधन करना होता है। बड़ी आँत अपान वायु का स्थान है। यदि बड़ी आँत में मल पदार्थ अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं तब अपान वायु क्रूर हो जाती है तथा अनेकों प्रकार के वायु सम्बन्धित रोग उत्पन्न होने लगते है। इस बड़ी आँत को जल के द्वारा शुद्ध एवं स्वच्छ बनाना एवं शरीरस्थ अपान वायु को सुव्यवस्थित करना जल वस्ति कर्म का उद्देश्य है। बड़ी आँत के स्वच्छ होने से वात विकार एवं रक्त विकार उत्पन्न नहीं होते एवं शरीर में हल्कापन बना रहता है।

जल वस्ति के महत्व को देखकर आधुनिक समय में चिकित्सकों द्वारा इसके समतुल्य एनिमा क्रिया का आविष्कार किया गया किन्तु ऋषि प्रोक्त वस्ति क्रिया एनिमा की तुलना में अधिक प्रभावी एवं लाभकारी क्रिया है क्योंकि एनिमा क्रिया में जल बाह्य बल द्वारा बड़ी आँत में चढ़ाया जाता है जबकि जल वस्ति क्रिया में जल संकुचन क्रिया के द्वारा अन्दर ग्रहण किया जाता है इसका सकारात्मक प्रभाव नाड़ी मण्डल पर पड़ता है।

ख. शुष्क वस्ति का उद्देश्य– शुष्क वस्ति का उद्देश्य वायु के द्वारा बड़ी आँत का शोधन करना होता है। इसके साथ–साथ शुष्क वस्ति कर्म का उद्देश्य अपान वायु को सुव्यवस्थित करना भी होता है।

5.3.3 नेति कर्म का उद्देश्य– नेति कर्म शीर्ष प्रदेश को स्वच्छ बनाने वाली षट्कर्म की तीसरी क्रिया है जिसे निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया गया है–

क. जल नेति
ख. सूत्र नेति

क. जल नेति का उद्देश्य– जल नेति का उद्देश्य जल के द्वारा नासिका को स्वच्छ बनाना होता है चूँकि नासिका शीर्ष प्रदेश का प्रवेश द्वार माना गया है, इस प्रदेश द्वार के स्वच्छ ना होने पर शीर्ष प्रदेश से सम्बन्धित रोग होने लगते है तथा इन्द्रियां (ज्ञानेन्द्रियां) दोष युक्त होने लगती है।

जल नेति का उद्देश्य शीर्ष प्रदेश का शोधन करना एवं इन्द्रियों को दोष रहित बनाना होता है। जल नेति का उद्देश्य शीर्ष प्रदेश में नाड़ी मण्डल (तंत्रिका तंत्र) को मलरहित एवं सक्रिय करना होता है। जलनेति कर्म में गरम एवं नमकीन जल का प्रयोग इस उद्देश्य से किया जाता है कि शीर्ष प्रदेश में जमा विकृत कफ नासिका के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाये।

ख. सूत्र नेति का उद्देश्य– सूत्र नेति का उद्देश्य सूत्र की रस्सी के माध्यम से नासिका एवं शीर्ष प्रदेश का शोधन करना होता है। सूत्र नेति का उद्देश्य दृष्टि दोषों का दूर करना एवं खेचरी मुद्रा को सिद्ध करना होता हैं सूत्र नेति कर्म का उद्देश्य शारीरिक दोषों को दूर करने के साथ–साथ मानसिक शुद्धि प्राप्त करना होता है।

5.3.4 लौलिकी कर्म का उद्देश्य– लौलिकी कर्म का सम्बन्ध उदर प्रदेश से हैं यह क्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है जिसके चार भेद किये गये हैं–

क. मध्यमा लौलिकी
ख. वाम लौलिकी
ग. दक्षिण लौलिकी
घ. भ्रमर लौलिकी

क. मध्यमा लौलिकी का उद्देश्य– मध्यमा लौलिकी का उद्देश्य उदर प्रदेश के मध्य में स्थित मांसपेशियों को उत्तेजित करना होता है। मध्यमा लौलिकी का अभ्यास मणिपुर चक्र को जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है। मणिपुर चक्र का स्थान नाभि होता है। इस नाभि पर मध्यमा लौलिकी सीधा प्रभाव रखती है तथा इस चक्र को जाग्रत करती है।

ख.वाम लौलिकी का उद्देश्य– वाम लौलिकी का उद्देश्य उदर की वाम क्षेत्र में स्थित मांसपेशियों को उत्तेजित करना होता है। वाम लौलिकी करने से आंतों की क्रियाशीलता बढ़ती है तथा इन आंतों में ऊर्जा का संचार करने के उद्देश्य से वाम लौलिकी का अभ्यास किया जाता है।

ग. दक्षिण लौलिकी का उद्देश्य– दक्षिण लौलिकी का अभ्यास उदर के दक्षिणी क्षेत्र की मांसपेशियों को उत्तेजित करना होता है। दक्षिणी लौलिकी के अभ्यास का उद्देश्य इन मांसपेशियों में ऊर्जा का संचार करना तथा इन्हें उत्तेजित एवं सक्रिय बनाना होता है।

घ. भ्रमर लौलिकी का उद्देश्य– जब मध्यमा लौलिकी, वाम लौलिकी तथा दक्षिण लौलिकी का अभ्यास क्रमानुसार किया जाता है। तब यह क्रिया भ्रमर लौलिकी कहलाती है। इस क्रिया का उद्देश्य सम्पूर्ण उदर प्रदेश में ऊर्जा एवं चेतना का विस्तार करना होता है। उदर की मांसपेशियों, धमनियों, शिराओं एवं नाड़ियों में रक्त संचार तीव्र करने के उद्देश्य से भ्रमर लौलिकी का अभ्यास किया जाता है। यह अभ्यास तन्त्रिका तन्त्र एवं नाड़ियों पर भली–भांति नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से किया जाता है।

5.3.5 त्राटक कर्म का उद्देश्य–

प्रिय पाठकों त्राटक कर्म का सम्बन्ध मानसिक एकाग्रता एवं मन को निर्मल बनाने से है, यह षट्कर्मो में शुद्धिकरण की पांचवी क्रिया है जिसके तीन प्रकार है–

क. बहि त्राटक
ख. अन्तः त्राटक
ग. अधो त्राटक

क. बहि त्राटक का उद्देश्य– बहि त्राटक का उद्देश्य चंचल चित्त को किसी बाह्य वस्तु में स्थापित करना होता है। बहि त्राटक का अभ्यास मानसिक अशान्ति एवं अस्थिरता को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस क्रिया का अभ्यास शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक उत्तेजनाओं को दूर कर स्थिरता एवं शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है।

ख. अन्तः त्राटक का उद्देश्य– अन्तः त्राटक का उद्देश्य मन की समस्त शक्तियों को केन्द्रित करना होता है। अन्तः त्राटक का अभ्यास अन्तः दृष्टि को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। अन्तःकरण को शुद्ध करने के उद्देश्य हेतु अन्तःत्राटक का अभ्यास उत्तम माना गया है।

ग. अधोः त्राटक का उद्देश्य– अधोत्राटक का अभ्यास मन को स्थिरता प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है अधो त्राटक का उद्देश्य मन की अर्न्तचेतना को जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है।

त्राटक कर्म का उद्देश्य मन को निर्विकार बनाकर अन्तःकरण को शुद्ध करना होता है चूँकि विकार युक्त मन अशान्ति उत्पन्न करता है। मन के इन विकारों को दूर करने का त्राटक एक उत्तम साधन है। त्राटक कर्म का अभ्यास नाड़ियों में ऊर्जा का संचरण करता है

परिणाम स्वरूप साधक मुद्राओं को सिद्ध करने में सक्षम होता है तथा त्राटक कर्म का अभ्यास करने से शरीरस्थ चक्रों का जागरण होता है।

5.3.6 कपालभाति कर्म का उद्देश्य– कपाल भाति कर्म का उद्देश्य शरीर शुद्धि के साथ–साथ प्राणमय कोश का शोधन करना होता है। वायु एवं जल के भेद से कपालभाति कर्म के तीन प्रकार किये गये है–

क. वातक्रम कपालभाति
ख. व्युत्क्रम कपालभाति
ग. शीतक्रम कपालभाति

क. वातक्रम कपालभाति का उद्देश्य– वातक्रम कपालभाति का उद्देश्य प्रश्वास के द्वारा शरीर की गन्दगियों को बाहर निकालना होता है वातक्रम कपालभाति का अभ्यास शरीर में शुद्ध प्राण वायु (ऑक्सीजन) की वृद्धि करता है तथा शरीर में स्थित कार्बन डाइआक्साइड एवं अन्य हानिकारक अशुद्धियों को बाहर निकालता है अर्थात शरीर की प्राण ऊर्जा एवं जीवनी शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से वातक्रम कपालभाति का अभ्यास किया जाता है।

ख. व्युत्क्रम कपालभाति का उद्देश्य– व्युत्क्रम कपालभाति का उद्देश्य जल के द्वारा शीर्ष प्रदेश की गन्दगियों को बाहर निकालना होता है। व्युत्क्रम कपालभाति का अभ्यास शीर्ष प्रदेश की शुद्धि की प्रकिया हैं।

5.4 षट्कर्मो का फल–

षट्कर्मो के फलों पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड लिखते हैं

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढमू।।
–(घे0 सं 1/10)

अर्थात् षट्कर्मो से शरीर का शोधन एवं आसनों दृढता प्राप्त होती है। इसी संदर्भ में स्वात्माराम योगी लिखते हैं–

कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्।
– (ह0प्र0 2/23)

अर्थात् शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली छह क्रियाएं (षट्कर्म) गोपनीय रखनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि षट्कर्म की छह क्रियाएं अभ्यासी साधक को उत्तम फल प्रदान करती है। इन षट्कर्मो के फलों का विवरण इस प्रकार है–

5.4.1 धौति कर्म का फल– धौति कर्म का अभ्यास करने से सम्पूर्ण उदर प्रदेश की सफाई होती है। पाचन तंत्र स्वस्थ, सक्रिय, निर्मल एवं रोगरहित बनता है। पाचन तंत्र के रोगों से ग्रस्त व्यक्ति को धौति कर्म का अभ्यास करने से बहुत अच्छे फल मिलते है। अर्थात् उसके रोग बहुत शीघ्रता से दूर होते है। अम्लपित्त, मन्दाग्नि, कब्ज, अपच, गैस, खाँसी, दमा, तिल्ली का बढ़ना, तथा कुष्ठ आदि रोगों में धौति कर्म का अभ्यास करने से लाभ मिलता है। स्वात्माराम योगी धौति कर्म के फलों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

कासश्वासप्लीह कुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयानत्येव न संशयः।
– (ह0 प्र0 2/25)

अर्थात् धौति क्रिया के फलस्वरूप खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अपच बीसों प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निसन्देह नष्ट होते हैं। धौति क्रिया का अभ्यास अपान वायु की क्रूरता को दूर करता है। वात रोगों में धौति क्रिया का अभ्यास लाभ देता है। धौति क्रिया

के अभ्यास से नाड़ियां जाग्रत होती है जिससे कुण्डलीनी शक्ति के जागरण में सहायता मिलती है।

5.4.2 वस्ति कर्म का फल– वस्ति कर्म का अभ्यास करने से बड़ी आँत की शुद्धि होती है तथा बड़ी आँत से सम्बन्धित रोग दूर होते है। वस्ति कर्म के फलों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते है–

गुल्म प्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्म प्रभावेण क्षीयन्ते सकलामयाः।।

– (ह0 प्र0 2/37)

अर्थात् बस्ति क्रिया के अभ्यास के फलस्वरूप वायु गोला, तिल्ली, जलोदर, तथा वात, पित्त, कफ जन्य सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। वस्ति क्रिया का अभ्यास वात दोष की विकृति को मुख्य रूप से दूर करता है चूँकि वात दोष पित्त एवं कफ दोष पर भी प्रभाव डालता है अतः वात दोष के सम होने से पित्त एवं कफ दोष भी साम्यावस्था को प्राप्त होते है। अर्थ यह है कि वस्ति कर्म का फल वात, पित्त एवं कफ दोषों की समता के रूप में प्राप्त होता है।

बड़ी आँत से सम्बन्धित कब्ज, पेट गैस, पेट दर्द, अपच आदि रोगों में वस्ति कर्म का अभ्यास करने से लाभ प्राप्त होता है। वस्ति कर्म के अभ्यास से आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है, आँतों को बल मिलता है तथा उदर प्रदेश की गर्मी दूर होती है। उदर प्रदेश की गर्मी दूर होने से पाचन अंग सुव्यवस्थित रूप से अपना कार्य करते है। वात दोष की विकृति से उत्पन्न रोगों में वस्ति क्रिया का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी फल देता है।

5.4.3 नेति कर्म का फल– नेति कर्म गले से ऊपर के सभी अंग अवयवों को स्वस्थ बनाने वाली क्रिया है। नेति कर्म के फलों के संदर्भ में स्वात्माराम योगी लिखते है–

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टि प्रदायिनी।
जूत्रर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।।

– (ह0 प्र0 2/30)

अर्थात् नेति क्रिया कपाल प्रदेश को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि प्रदान करती है और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती है। जलनेति का अभ्यास करने से साइनस ग्रन्थियाँ उत्तेजित होती है तथा साइनस रोग दूर होता है। जलनेति करने से नासिका की सफाई होती है तथा धूल आदि के कण व विकृत कफ जल के साथ बाहर आ जाता है, इससे श्वसन क्रिया सुव्यवस्थित होती है। जल नेति का अभ्यास जुकाम रोग में विशेष लाभ प्रदान करता है। जल नेति का अभ्यास एलर्जी रोग में भी लाभकारी है। जलनेति क्रिया का अभ्यास मानसिक तनाव को दूर कर शान्ति प्रदान करता है।

सूत्र नेति का अभ्यास करने से नासिका की अच्छी प्रकार सफाई होती है। इसके अभ्यास यहाँ स्थित संवेदनशील नाड़ियां उत्तेजित होती है, जिनके प्रभाव से सुनने की क्षमता, देखने की क्षमता, तथा सूंघने की क्षमता का विस्तार होता है।

प्रिय पाठकों आधुनिक समय में जब आँख, नाक एवं गले से सम्बन्धित रोग बहुत बढ़ रहे है, जल नेति एवं सूत्र नेति का अभ्यास बहुत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। नेत्र दृष्टि कम होना, बालों का झड़ना, बालों का असमय सफेद होना, लम्बे समय तक जुकाम रहने की अवस्था में नेति कर्म का अभ्यास शीघ्र लाभ देता है।

5.4.4 लौलिकी कर्म का फल– लौलिकी कर्म का उदर की मांसपेशियों पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लौलिकी कर्म के फलों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी लिखते हैं–

मन्दाग्निसंदीपन पाचनादिसंन्धायिकानन्द करी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रिया मौलिरियं च नौलिः।।

– (ह0 प्र0 2/34)

अर्थात् सदा–सर्वदा आनन्द को लाने वाली यह नौलि–क्रिया मन्द जठराग्नि को प्रदिप्त कर पाचन क्रिया आदि को तेज करती है, विविध दोषों तथा रोगों को नष्ट करती है, इसीलिए यह हठ क्रियाओं में श्रेष्ठ है।

लौलिकी क्रिया का अभ्यास उदर की मांसपेशियों को सक्रिय करता है उदर में स्थित क्लोम ग्रन्थि (पेन्क्रियाज) के स्राव को बढ़ाता है, जठराग्नि बढ़ाता है परिणामस्वरूप भोजन का पाचन भलीभाँति होता है। इस क्रिया के अभ्यास से उदर में स्थित आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है। परिणामस्वरूप कब्ज जैसे गम्भीर रोग दूर होते हैं। लौलिकी क्रिया का प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ता है तथा इससे शरीर के आन्तरिक अंग–अवयवों पर मस्तिष्कीय नियंत्रण बढ़ता हैं इसके अत्यधिक लाभकारी फलों के कारण हठयोगी स्वात्माराम योगी लौलिकी कर्म को हठ क्रियाओं में श्रेष्ठ क्रिया की संज्ञा देते है।

लौलिकी कर्म का अभ्यास करने से कब्ज, अपच, मन्दाग्नि, मधुमेह, पेट का भारीपन, पेट का मोटापा आदि रोग दूर होते है।

5.4.5 त्राटक कर्म का फल– त्राटक कर्म शरीर के साथ–साथ मन पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। त्राटक के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता में वृद्धि होती है तथा मानसिक तनाव के स्थान पर शान्ति की प्राप्ति होती है। त्राटक कर्म के फलों को स्वात्माराम योगी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाट्कम्।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेट्कम्।।

– (ह0 प्र0 2/32)

अर्थात् त्राटक कर्म नेत्र रोगों को दूर करता है, तन्द्रा आदि को नहीं आने देता। इस त्राटक कर्म को सोने की पेटी के समान महत्व देकर इसकी रक्षा करनी चाहिए। त्राटक कर्म का नेत्र की मांसपेशियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है तथा इसके अभ्यास से ये मांसपेशियाँ शक्तिशाली बनती है।

प्रिय पाठकों त्राटक कर्म का अभ्यास मानसिक एकाग्रता को बढ़ाने वाला होता है। प्रायः उम्र बढ़ने के साथ–साथ स्मरण शक्ति कम होने लगती है ऐसी अवस्था में त्राटक क्रिया का अभ्यास करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है मन में तनाव एवं निराशा के स्थान पर नई विचार शक्ति का उदय होता हैं त्राटक का अभ्यास मानसिक ऊर्जा एवं उमंग को पैदा करता है इसका अभ्यासी साधक सदैव प्रसन्नता एवं आनन्द का अनुभव करता है।

त्राटक कर्म के अभ्यास से आज्ञा चक्र जाग्रत होता है जिससे साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। इसी को ही अन्तदृष्टि की संज्ञा दी जाती है।

5.4.6 कपालभाति कर्म का फल– कपालभाति कर्म शरीर की गन्दगियों को वायु एवं जल के द्वारा बाहर निकालता हुआ शरीर शोधन करता है। कपालभाति कर्म के सम्बन्ध में स्वात्माराम योगी लिखते हैं–

कपालभाति र्विख्याता कफदोषविशोषणी।।

– (ह0 प्र0 2/35)

अर्थात् कपालभाति का अभ्यास कफ दोष से सम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है। कपालभाति के अभ्यास का फल शरीर की गन्दगियों के निष्कासन के रूप में प्राप्त होता है। शरीर से गन्दगियाँ निकलने पर शरीर की कान्ति एवं आभा बढ़ती है, व्याधि, जरा एवं बुढ़ापा आदि अवस्थाओं के लक्षण अभ्यासी साधक के शरीर में नहीं आते है। कपालभाति के अभ्यास से साधक का शरीर स्वच्छ, निर्मल एवं रोग रहित हो जाता है।

शरीर से गन्दगियाँ निकल जाने पर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति का विकास होता है। सर्दी, जुकाम, खाँसी, त्वचा रोग, मोटापा, स्थूलता आदि रोगों में कपालभाति का अभ्यास करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

1. सत्य/असत्य

(क) षट्कर्म शरीर को प्रदूषण के कुप्रभाव से बचने में असक्ष्म बनाता है।

(ख) हमारे शरीर एवं मन का नियंन्त्रण उदर प्रदेश से होता है।

(ग) बड़ी आँत अपान वायु का स्थान है।

(घ) सूत्र नेति का उद्देश्य दृष्टि दोषों को दूर करना एवं खेचरी मुद्रा को सिद्ध करना होता है।

(ड) लौलिकी कर्म हठ क्रियाओं में श्रेष्ठ क्रिया है।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(क) शरीर में ..... एवं ..... की अधिकता होने पर पहले षट्कर्म के द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए।

(ख) मूलशोधन क्रिया का उद्देश्य ..... को सुव्यवस्थित करना होता है।

(ग) मध्यमा लौलिकी का अभ्यास ..... चक्र को जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है।

(घ) वस्ति कर्म का अभ्यास करने से ..... की शुद्धि होती है।

(ड) ..... सकन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती है।

3 बहुविकल्पीय प्रश्न

क. दन्तधौति का उद्देश्य है –

(a) उदर प्रदेश का शोधन (b) शीर्ष प्रदेश का शोधन

(c) वक्ष प्रदेश का शोधन (d) कटि प्रदेश का

ख. जल वस्ति के समतुल्य आधुनिक समय में कराई जाने वाली क्रिया है –

(a) जलनेति (b) जल कपालभाति

(c) एनिमा (d) वमन

ग. सूत्रनेति कर्म का उद्देश्य है –

(a) नासिका का शोधन (b) दृष्टि दोषों का निवारण

(c) खेचरी मुद्रा की सिद्धि (d) सभी

घ. किस क्रिया का फल स्मरण शक्ति एवं मानसिक एकाग्रता बढने के रुप में प्राप्त होता है –

(a) त्राटक कर्म (b) नेति कर्म

(c) नौलि कर्म (d) धौति कर्म

ड. कौन सी क्रिया का अभ्यास करने से शरीर में व्याधि, जरा व बुढापे के लक्षण नही आते –

(a) कपालभाति (b) जलनेति

(c) नौलिकर्म (d) धौति कर्म

5.5 सारांशे

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके है कि षट्कर्म छह शोधन क्रियाओं का समूह है जिनका अभ्यास करने से शरीर एवं मन में स्वच्छता एवं निर्मलता का विस्तार होता है। इन षट्कर्मो में प्रथम कर्म धौति क्रिया सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन करती है। वस्ति कर्म बड़ी आँत को शुद्ध बनाती है। नेति कर्म का सम्बन्ध शीर्ष प्रदेश से है, यह अभ्यास नासिका एवं इन्द्रियों में स्वच्छता उत्पन्न करता है। लौलिकी कर्म उदर की मांसपेशियों को उत्तेजित एवं सक्रिय करता हुआ मणिपूर चक्र को जाग्रत करने में सहायता करता है। त्राटक कर्म का सम्बन्ध नेत्र की मांसपेशियों से है यह अभ्यास मानसिक एकाग्रता को उत्पन्न करता है। कपालभाति कर्म शरीर से गन्दगियों एवं विजातीय पदार्थो को वायु एवं जल के द्वारा बाहर निकालता है। इस क्रिया के अभ्यास से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति का विकास होता है।

उपरोक्त विवेचन सिद्ध करता है कि षट्कर्म की क्रियाएं शरीर शोधन के उद्देश्य से की जाती है तथा अत्यन्त लाभकारी फल प्रदान करती है। ऋषिप्रोक्त इन षट्कर्मो का उद्देश्य शरीर शोधन के साथ–साथ मन की दृढ़ इच्छाशक्ति एवं शरीरस्थ चक्र जागरण करना होता है। इन षट्कर्मो का उपदेश ऋषियों द्वारा जन–कल्याण के लिए किया गया है।

5.6 शब्दावली

- मेध – वसा अथवा चर्बी
- श्लेष्मा – कफ
- क्रूर – विकृत अवस्था
- कान्तियुक्त – चमक
- प्रदिप्त – बढ़ाना
- तन्द्रा – कार्य ना करने की इच्छा
- जरा – कमजोरी
- व्याधि – बिमारी

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. असत्स	क. मेद,श्लेष्मा	क. b
ख. असत्य	ख. अपान वायु	ख. c
ग. सत्य	ग. मणिपूर	ग. d
घ. सत्य	घ. ब	घ. a
ड. सत्य	ड. नेति क्रिया	ड. a

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द (2004) घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशनट्रस्ट मुंगेर, बिहार, भारत।
2. दिगम्बर स्वामी, झा डा0 पीताम्बर, (2008) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला, पुणे।
3. रामदेव स्वामी (2011) योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, साई सिक्यूरिटी प्रिंटर्स प्रा. लिमिटेड फरीदाबाद।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. षट्कर्मो के उद्देश्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. षट्कर्मो के फलों पर प्रकाश डालते हुए इनकी उपादेयता लिखिए।

इकाई – 6 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्म

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 षट्कर्म का अर्थ
6.4 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्म
6.4.1 धौति कर्म
6.4.2 बस्ति कर्म
6.4.3 नेति कर्म
6.4.4 त्राटक कर्म
6.4.5 नौलि कर्म
6.4.6 कपालभाति कर्म
6.5 षट्कर्मो का फल
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, आप षट्कर्म शब्द से भली–भांति परिचित होंगे। हठयौगिक अभ्यासों में षट्कर्मों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। षट्कर्म शोधन की छः क्रियायें हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य शरीर के विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर राजयोग की साधना के योग्य बनाना होता है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर एवं मन का शोधन के साथ शरीर में स्थित वात, पित्त एवं कफ दोषों में समानता आती है। शरीर में मेध एवं श्लेष्मा की अधिकता दूर होती है, शरीर की स्थूलता अर्थात् भारीपन नष्ट होता है, जिससे शरीर में हल्कापन आता है तथा शरीर के रोग दूर होते हैं। यें षट्कर्म इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि

इनका अभ्यास करने से शरीर का कायकल्प हो जाता है अर्थात् शरीर की अशुद्वियां दूर होकर शरीर में नवीन ऊर्जा का संचार होता है और शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां दूर होती हैं।

अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि ये षट्कर्म कौन–कौन से हैं? इनकी विधि क्या है? क्या इनका हमारे व्यावहारिक जीवन में भी कोई महत्व है, इत्यादि।

आपकी इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत इकाई में करने का प्रयास किया जायेगा, जिसमें हम हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मों का विवेचन करेंगे। हठप्रदीपिका हठयोग का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें स्वात्माराम योगी द्वितीय अध्याय में षट्कर्मो का वर्णन करते हैं। इस अध्याय में स्वात्माराम योगी इन षट्कर्मो की विधि के साथ–साथ इनके लाभों एवं महत्व पर भी प्रकाश डालते है। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मो के विषय में ज्ञान अर्जित करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मो का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- षट्कर्म क्या है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- षट्कर्मों के उद्देश्य एवं महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मों की विधि, लाभ इत्यादि का अध्ययन कर सकेंगे।
- विभिन्न रोगों के परिपेक्ष्य में षट्कर्मो की उपादेयता का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम हो सकेंगे।
- व्यावहारिक जीवन में षट्कर्मों की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

6.3 षट्कर्म का अर्थ

प्रिय पाठकों, सर्वप्रथम हम षट्कर्म के शाब्दिक अर्थ पर विचार करते हैं, षट्कर्म शब्द दो शब्दों षट् + कर्म से मिलकर बना है। षट् का अर्थ छह से एवं कर्म का अर्थ क्रियाओं से होता हैं, अर्थात् षट्कर्म छह क्रियाओं का समूह है। यहॉ पर शरीर शोधनार्थ छह क्रियाओं के सम्मिलित रुप को षट्कर्म की संज्ञा दी गयी है। षट्कर्म का आशय ऐसी छः क्रियायों से है जिनका उद्देश्य शरीर को शुद्ध करना एवं शरीर से विकृत वात, पित्त एवं कफ दोषों को बाहर निकालना है। हठयोग स्थूल शरीर पर आधारित साधना पद्धति है, जिसमें सर्वप्रथम स्थूल शरीर की शुद्धि एवं नियंत्रण पर बल दिया जाता है, तथा इसके बाद मानसिक शुद्धि एवं नियंत्रण की दिशा में आगे बढ़ा जाता है। इस हठयोग के प्रथम अंग के रुप में शरीर शोधन हेतु षट्कर्मो का उपदेश किया गया है।

हठयोग साधना का प्रारम्भ स्थूल शरीर के शोधन से होता है। स्थूल शरीर को शुद्ध करने की प्रथम सीढी के रुप में षट्कर्मो का उपदेश किया गया है। जब तक शरीर में मेध एवं श्लेष्मा की अधिकता रहती है, तब तक शरीर में आलस्य, भारीपन, निन्द्रा एवं तन्द्रा आदि की अधिकता बनी रहती है। इसके साथ–साथ शरीर में वात, पित्त, कफ दोषों की विषमता रहने पर शरीर में रोग उत्पन होने की प्रबल सम्भावना रहती है, अतः सर्वप्रथम इन षट्कर्मो के अभ्यास से अशुद्वियों एवं विजातीय तत्वों को बाहर निकाला जाता है। इन तत्वों के बाहर निकलने से शरीर के वात–पित्त–कफ दोषों में समता उत्पन होती है एवं शरीर में

लघुता व शुद्वता आती है। इस प्रकार षट्कर्मो का अभ्यास कर स्वच्छ, निर्मल एवं निरोगी शरीर के साथ साधक अपनी योग साधना के पथ पर अग्रसर होता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि षट्कर्म शरीर शोधन की क्रिया है जिनका वर्णन हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ हठप्रदीपिका में प्राप्त होता है। अब आपके मन में हठप्रदीपिका में वर्णित इन षट्कर्मो को जानने की जिज्ञासा ओर बढ़ गई होगी।

6.4 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्म

प्रिय पाठकों, हठयोग के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इनमें दो ग्रन्थों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम हठप्रदीपिका एवं द्वितीय घेरण्ड संहिता। इन दोनों ही ग्रन्थों में षट्कर्मों का विवेचन मिलता है। हठप्रदीपिका के द्वितीय अध्याय में षट्कर्म का वर्णन किया गया है जबकि घेरण्ड संहिता में तो हठयोग के प्रथम अंग के रूप में प्रारंभ में ही इन शुद्धि क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्रिय पाठकों, यहां पर हमारे अध्ययन का विषय प्रधान रूप से हठप्रदीपिका में वर्णित षटकर्मों का वर्णन करना है।

हठप्रदीपिका जो कि योगेन्द्र स्वात्मारामसूरी कृत रचना है, उसमें हठयोग के प्रधान रूप से चार अंग बताये गये हैं–

1. आसन 2. मुद्रा
3. प्राणायाम 4. नादानुसंधान

हठप्रदीपिका में षट्कर्मों का वर्णन "प्राणायाम विधि कथन" नामक द्वितीय अध्याय में किया गया है। इस अध्याय में स्वात्माराम योगी षट्कर्मो पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।

– (हठप्रदीपिका 2 /22)

अर्थात् धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएं कहे गये हैं। इस उपदेश में योगीराज स्वात्माराम शरीर की स्थूलता एवं कफ दोष की अधिकता को दूर करने के उपाय के रुप में षट्कर्मो का उपदेश करते हैं। चूंकि स्थूल शरीर एवं विषम दोषों के साथ योगमार्ग की साधना के मार्ग पर आगे बढना सम्भव नही है अतः सर्वप्रथम स्थूलता एवं दोषों की विषमता दूर करने के उद्देश्य से छह शोधन क्रियाओं (षट्कर्मो) के अभ्यास का उपदेश स्वात्माराम योगी करते हैं। यहां पर इन षट्कर्मो की अनिवार्यता प्रत्येक मनुष्य के लिए नही बताई गयी है। इस संदर्भ में योगीराज स्वात्माराम हठप्रदीपिका में स्पष्ट उल्लेख करते हुए कहते हैं–

मेद श्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।।''

– (हठप्रदीपिका 2 /21)

अर्थात् स्थूलता एवं कफ जिसे अधिक हो उसे पहले छः शोधन क्रियायें करनी चाहिये किन्तु जिनमें ये दोषों (वात, पित्त, कफ) की समानता हो, उन्हें इन क्रियाओं के अभ्यास करने की विशेष आवश्यकता नहीं है।

अतः हम कह सकते हैं कि विकृत कफ की निवृत्ति एवं त्रिदोषों के साम्य के लिये स्वात्माराम योगी ने षट्कर्मों को करने की आवश्यकता का निर्देश दिया है। षट्कर्मों के संदर्भ महर्षि घेरण्ड ने भी कहा है–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।
–(घेरण्ड संहिता 1/2)

अर्थात् धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक एवं कपालभाति इन छह कर्मो का आचरण योगी के लिए आवश्यक है। अब हम हठप्रदीपिका के अनुसार इन षट्क्रियाओं का सविस्तार से अध्ययन करते हैं–

6.4.1 धौति कर्म– प्रिय पाठकों धौति क्रिया का अर्थ धोने होता है, यहां पर उदर प्रदेश अथवा आमाश्य को वस्त्र एवं जल से धोकर शुद्ध करने के अर्थ में धौति कर्म का उपदेश किया गया है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी धौति कर्म के दो भेदों का विवेचन करते हैं–

(क) वस्त्रधौति
(ख) गजकरणी

(क) वस्त्रधौति– प्रिय पाठकों वस्त्रधौति के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें वस्त्र (कपड़े) के द्वारा शुद्धि क्रिया की जाती है। इस क्रिया में वस्त्र के माध्यम से शरीर के आन्तरिक अंगों की सफाई जिसमें मुंह, आहारनाल एवं आमाशय प्रधान रूप से आते हैं, का शोधन किया जाता है। वस्त्रधौति का वर्णन करते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

चतुरघगुलविस्तारं हस्तपत्र्चदशायतम्।
गुरुपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्।
पुनः प्रत्याहरे च्चैतदुदितं धौति कर्म तत्।।
– (हठप्रदीपिका 2/24)

अर्थात् चार अंगुल चौड़ा पन्द्रह हाथ लम्बा कपड़ा, जल में भिगोकर गुरू के निर्देश के अनुसार धीरे–धीरे बाहर निकालना चाहिये। इसे धौति क्रिया कहते हैं। इस क्रिया की विधि इस प्रकार है–

विधिः– वस्त्रधौति के अभ्यास के लिये 15 हाथ लम्बा (22फुट लम्बा) एवं चार अंगुल चौडा मुलायम एवं जीवाणुरहित सूती अथवा मलमल का वस्त्र लेते हैं। इस वस्त्र को पानी में उबालकर जीवाणु रहित कर लेते हैं। अब इसे गोलाई में लपेटकर जल में लपेट कर जल में भिगोकर रखते हैं। कागासन में उकडू बैठकर इस वस्त्र धौति के एक सिरे को जिह्वा मूल पर रखते हुए अन्दर निगलना प्रारम्भ करते हैं। 8 से 10 मिनट के समयन्तराल के अन्दर इस पूरे वस्त्र को निगल जाते है तत्पश्चात् इस वस्त्र को वमन के रुप में बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास वस्त्रधौति कहलाती है।

लाभ– स्वात्माराम योगी वस्त्रधौति कर्म के लाभों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

कासश्वासप्लीहकुष्टं कफरोगाश्चविंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयानत्येव न संशयः।

– (हठप्रदीपिका 2/25)

अर्थात् धौति क्रिया के फलस्वरूप खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अपच बीसों प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निसन्देह नष्ट होते हैं।

(ख) गजकरणी– पाठकों गजकरणी की क्रिया भी पाचन संस्थान की शुद्धि से सम्बद्ध है। इसकी विधि इस प्रकार है–

उदरगतपदार्थमुद्वमन्ति पवनमपानमुदीर्य कण्ठनाले।
क्रमपरिचयपश्यनाडिचक्रा गजकरणीति निगद्यते हठज्ञैः।।

– (हठप्रदीपिका 2/26)

अर्थात् क्रमशः नाड़ी समूहों पर नियंत्रण पाकर साधकगण अपानवायु को ऊपर उठाकर, कण्ठ नली में लाकर, उदर स्थित पदार्थों (अन्न–जल आदि) का वमन करते हैं। यह किया गजकरणी कहलाती है।

विधि :– प्रिय पाठकों गज का अर्थ हाथी से है, जिस प्रकार हाथी सूंड में पानी भरकर बाहर फेंकता है उसी प्रकार इस अभ्यास हेतु हल्के गर्म अथवा गुनगुने पानी में हल्का सा नमक मिलाकर उसे पीना प्रारम्भ करते है। इस अभ्यास हेतु यत्नपूर्वक अधिक से अधिक पानी पीते है, तत्पश्चात अंगुलियों को बिना मुख में डाले फव्वारे की तरह इस जल को धारा प्रवाह के रुप में बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास गजकरणी कहलाता है।

लाभः– इस अभ्यास से आमाश्य में स्थित प्रकुपित पित्त निकल जाता है परिणामस्वरुप अम्लपित्त, पेट में जलन, सिर दर्द, रक्त विकार एवं त्वचा रोगों में इस अभ्यास को करने से लाभ मिलता है। ऐसे व्यक्ति जिनके आमाश्य में अम्ल की अधिकता रहती है तथा मुह में खट्टा पानी व सीने में जलन रहती है, प्रातः काल गजकरणी किया का अभ्यास करने से लाभ मिलता है।

6.4.2 बस्ति कर्म– प्रिय विद्यार्थियों हठप्रदीपिका में षट्कर्म की दूसरी क्रिया के अन्तर्गत बस्ति कर्म का वर्णन किया गया है। यह अभ्यास जल के द्वारा आंतों एवं गुदा मार्ग की शुद्धि करता है। इस अभ्यास पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

नाभिदघ्नजले पायुन्यस्तनालोत्कटासनः।

आधाराकुत्र्चनं कुर्यात् क्षालनं बस्तिकर्म तत्।।

– (हठप्रदीपिका 2/26)

अर्थात्– नाभिपर्यन्त जल में स्थित हो, गुदा में एक नली डालकर उत्कटासन करते हुए साधक गुदा का संकोचन करें और (अन्दर के भाग को) धोये। इसे "बस्ति क्रिया" कहते हैं।

विधि :– बस्ति कर्म हेतु नाभि तक गहरे जल में उत्कटासन में स्थित होकर एक नली को गुदा में प्रविष्ट कराते हैं। इस नली का दूसरा सिरा जल में डूबा रहता है अब श्वसन क्रिया के साथ गुदा के आकुंचन एवं परासरण की क्रिया करते है। इस क्रिया के परिणामस्वरुप स्वच्छ जल आतों में जाकर आतों को स्वच्छ बनाता है।

लाभ– पाठकों बस्ति कर्म के लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते है–

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः।।

– (हठदीपिका 2/27)

अर्थात् बस्ति क्रिया के अभ्यास के फलस्वरुप वायुगोला, तिल्ली, जलोदर तथा वात, पित्त, कफ जन्य सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

यह बडी आंत को स्वच्छ बनाने की क्रिया है, जिसका अभ्यास करने से कब्ज, अपच, गैस, पेट दर्द आदि रोग दूर होते हैं। इसके साथ ही धातुओं की पुष्टि, इन्द्रिय एवं अन्तः करण की प्रसन्नता प्राप्त होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह अभ्यास शरीर में कान्ति लाता है।

6.4.3 नेति कर्म– प्रिय पाठकों, हठप्रदीपिका में षट्कर्म की तीसरी शोधन क्रिया के रुप में नेति कर्म का वर्णन किया गया है। इसे आधुनिक समय में ENT Care क्रिया के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इससे हमारी E= Eyes (आंख), N= Nose (नाक), T=Throat (गला) की सफाई होती है। हठप्रदीपिका में नेति क्रिया का वर्णन करते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं –

सूत्र वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखात्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते।।

– (हठप्रदीपिका 2/30)

अर्थात् चिकनी और लगभग 9 इंच लम्बी (विशेष रूप से तैयार किये गये) सूत्र को नासिका में डालकर उसे मुख्य से बाहर निकालें। इसे ही योगीजन नेति कहते हैं।

विधि– सूत्र नेति के अभ्यास के लिये सूत से बनी रस्सी को गर्म जल में भिगोकर जीवाणु रहित करते है। अब इसके एक सिरे को नासिका द्वार से अन्दर डालते है। नासिका से होती हुई सूत्र मुख में आ जाती है। मुख को खोलकर अंगुलियो की सहायता से इस सूत्र के एक सिरे को मुख से बाहर निकाल लेते हैं। अब इस सूत्र के दोनों सिरों को हाथों से पकड़ कर नासिका के अन्दर इसका परिचालन करते हैं तत्पश्चात् मुख से इसे निकाल लेते हैं।

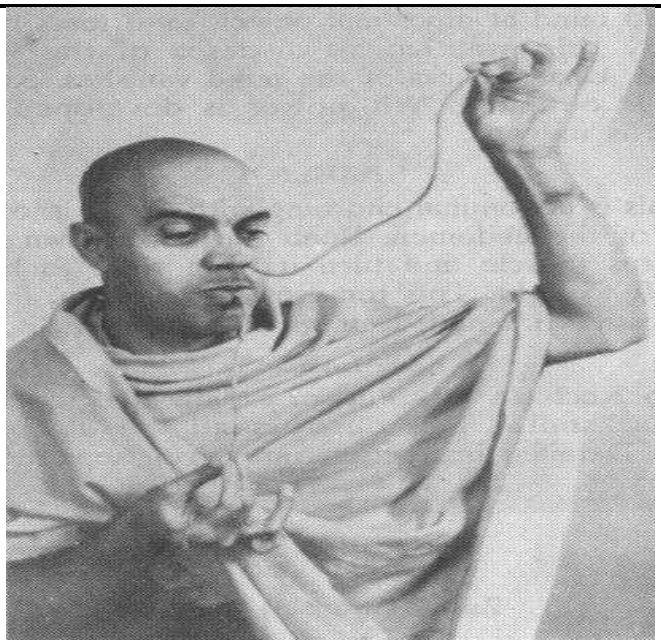

लाभ– प्रिय पाठकों नेति कर्म सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश को स्वच्छ एवं रोग रहित बनाने की क्रिया है, इस क्रिया के लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।।– (हठप्रदीपिका 2/31)

अर्थात् यह नेति कपाल प्रदेश (मस्तिष्क) को शुद्व करती है, दिव्य (सुक्ष्म) दृष्टि प्रदान करती है, और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती है। सूत्र नेति क्रिया का अभ्यास नेत्र रोग, सर्दी जुकाम, कफ रोग, साइनस, नाक की हड्डी बढना, बालो का सफेद होना, झडना तथा एलर्जी आदि रोगों में अत्यन्त लाभ प्रदान करता है ।

6.4.4 त्राटक कर्म– हठप्रदीपिका के अनुसार शोधन क्रियाओं में चौथा स्थान त्राटक का है, यह नेत्रों से संबंधित अभ्यास है, जिसका अभ्यास करने से मानसिक एकाग्रता में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि होती है।

प्रिय पाठकों आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी की त्राटक करने की विधि क्या है? स्वात्माराम योगी त्राटक कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं –

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।''– (हठप्रदीपिका 2/32)

अर्थात् स्थिरदृष्टि से किसी सूक्ष्म लक्ष्य को एकाग्र होकर तब तक देखना चाहिए जबतक कि आंख से आंसू बाहर न आ जाये, आचार्यों ने इसे त्राटक कहा है।

विधिः– त्राटक कर्म के लिये सर्वप्रथम एक सुक्ष्म लक्ष्य का चयन किया जाता है। इसके लिए दीपक की जलती लौ, सूर्य–चन्द्रमा, ग्रह–नक्षत्र, पेड–पौधे अथवा प्रेरणाप्रद चित्र का चयन किया जा सकता है। लक्ष्य चयन में ध्यान रखते हैं कि लक्ष्य शान्ति पूर्ण रुप से ऊर्जा प्रदान करने वाला होना चाहिए। अब ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर इस लक्ष्य को

टकटकी लगाकर तब तक देखते रहते हैं जब तक आँखो से आश्रुपात ना होने लगे। तत्पश्चात आंखों को बन्द करके उस लक्ष्य का ध्यान करते हैं।

लाभ– प्रिय पाठकों मन की चंचलता को दूर करने का यह अत्यन्त सरल अभ्यास है, इस क्रिया के लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्।। – (हठपदीपिका 2/33)

अर्थात् त्राटक नेत्र रोगों को दूर करता है तथा तन्द्रा आदि को नही आने देता अतः इस त्राटक को सोने की पेटी के समान महत्व देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये।

6.4.5 नौलि कर्म– प्रिय पाठकों, नौलि कर्म उदर की मांसपेशियों से संबंधित अभ्यास है। नौलि को लौलिकी भी कहा जाता है, जिसकी उत्पत्ति "लोल" शब्द से हुयी है। लोल का अर्थ उत्तेजनापूर्वक इधर–उधर घुमाने से होता है। इस नौलि कर्म में उदर की मांसपेशियों को दांये से बांये ओर बांये से दांये उत्तेजना पूर्वक एक लय में घुमाया जाता है। हठ प्रदीपिका कार नौलि कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं –

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैःप्रचक्ष्यते।। – (हठप्रदीपिका 2/34)

अर्थात् कन्धे को थोड़ा आगे की ओर झुकाकर तीव्र गति वाले भंवर के समान उदर को दाहिने से बांये ओर बांये से दांये घुमाना चाहिये। सिद्धों के द्वारा इसे ही नौलि कहा जाता है।

विधिः– नौलि कर्म के अभ्यास के लिए पैरों में एक से डेढ फीट की दूरी रखते हुए खडे होते हैं। अब दोनों हाथ पैर के घुटनों पर रखते हुए श्वास को बाहर निकालकर घुटनों को दबाते हैं तथा उदर की मांसपेशियों को संकुचित कर बाहर की ओर निकालते हैं। इस अभ्यास में पहले उदर के मध्य भाग को फिर वाम भाग को तथा फिर दक्षिण भाग को एक क्रम से संकुचित कर बाहर की ओर निकालने से नौलि घूमती हुई प्रदर्शित होती है। हठप्रदीपिका में इस अभ्यास को नौलि कर्म कहा गया है।

लाभः– नौलि कर्म उदर की मांसपेशियों को सक्रिय कर जठराग्नि को प्रदिप्त करता है। इसके लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादिसंधायिकानन्दकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।। – (हठप्रदीपिका 2/35)

अर्थात् सदा–सर्वदा आनंद को लाने वाली यह नौलि–क्रिया मन्द जठराग्नि को प्रदीप्त कर पाचन क्रिया आदि को तेज करती है। विविध दोषों तथा रोगों को नष्ट करती हैं इसलिये यह हठक्रियाओं में श्रेष्ठ है।

इसके अभ्यास से पाचक रसो का स्त्रावण बढता है, भूख भली–भांति लगती है, भोजन का पाचन एवं अवशोषण अच्छी प्रकार से होता है, एवं अजीर्ण, अपच, गैस, कब्ज, एवं अतिसार एवं उदर का मोटापा आदि रोग दूर होते हैं। नौलि क्रिया के महत्व को देखते हुए इस अभ्यास को स्वात्माराम योगी सर्वश्रेष्ठ क्रिया की संज्ञा देते हैं।

6.4.6 कपालभाति कर्म– प्रिय पाठकों, हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मो में छठा कर्म कपालभाति है। कपालभाति को एक प्राणायाम के रूप में भी स्वीकार किया गया है क्योंकि एक तो इसको करने की विधि प्राणायाम से समानता रखती हैं दूसरा कपालभाति का नियमित अभ्यास प्राणमय कोश को जाग्रत करता है। इस आधार पर कुछ विद्वान इस

अभ्यास को प्राणायाम वर्ग में स्थान देते हैं। यहां पर स्वात्माराम योगी कपालभाति कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं–

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।। – (हठप्रदीपिका 2/36)

अर्थात् लौहार की धौंकनी के समान शीघ्रता से रेचक पूरक करने से कपालभाति होती है। यह कफ रोगों को नष्ट करने वाली है।

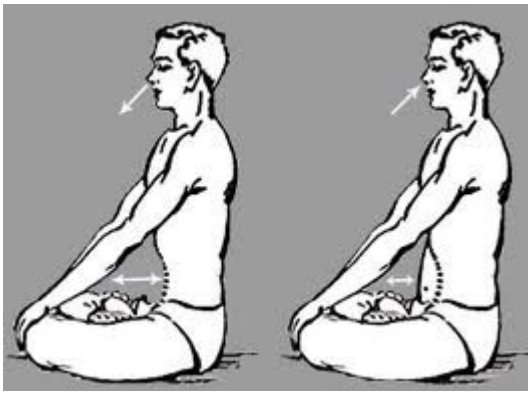

विधिः– कपालभाति कर्म के अभ्यास के लिए ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर बैठते हैं। अब तेजी से श्वास का रेचक (श्वास को बाहर छोडना) एवं पूरक (श्वास को अन्दर भरना) की क्रिया करते हैं। रेचक–पूरक की क्रिया शरीर को स्थिर रखते हुये मन में स्थिर भाव के साथ करते हैं। इन क्रियाओं में एक निश्चित लयबद्वता रखते है।

लाभ– यह अभ्यास श्वसन क्रिया के माध्यम से शरीरस्थ विजातीय तत्वों को बाहर निकालता है। इसका अभ्यास करने से शरीर की गन्दगियां बाहर निकालती हैं एवं रक्त शुद्व होता है। जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। यह अभ्यास शरीर में गाठों, त्वचा रोगों तथा मोटापा आदि रोगों को दूर करता हुआ शरीर को स्वच्छ, निरोगी, ऊर्जावान एवं कान्तिवान बनाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी षट्कर्मों का अत्यन्त सुन्दर विवेचन करते हैं।

6.5 षट्कर्मों का फल– प्रिय पाठकों इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हठयोग के अभ्यासों में षट्कर्मों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन अभ्यासों से शरीर शुद्धिकरण के साथ साथ मानसिक शोधन एवं एकाग्रता प्राप्त होती है। हठयोग की साधना में इन षट्कर्मों का विषेश महत्व है। इन षट्कर्मों के फलों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्।
विचित्रगुणसंधायि पूज्यते योगिपुडगवैः।।– (हठप्रदीपिका 2/23)

अर्थात् शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली ये छः क्रियायें गोपनीय रखनी चाहिये। इसलिये योगियों द्वारा इन्हें बहुत महत्व दिया गया है।

षट्कर्मों का अभ्यास करने से शरीर की अशुद्धियां बाहर निकलती है जिससे वात, पित्त, कफ दोष सम अवस्था को प्राप्त होते हैं। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर का कायाकल्प होकर शरीर मे नवीन ऊर्जा का संचार होता है, इन क्रियाओं के महत्व के

आधार पर योगी स्वात्माराम इन षट्कर्मों को आश्चर्यजनक फल देने वाली महत्वपूर्ण एवं गोपनीय क्रियाएं कहते हैं।

हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में ही पुनः इन षट्कर्मों के फलों एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया–

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफदोषमलादिकः।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्धयति।।– (हठप्रदीपिका 2/37)

अर्थात् मोटापा, कफ संबंधी रोग तथा मल आदि का षट्क्रियाओं द्वारा निवारण कर तब प्राणायाम करना चाहिये। इससे प्राणायाम अनायास ही सिद्ध होता है।

शरीर में मलों की अधिकता एवं दोषों की विषमता होने पर योगांगों का साधन करने पर उनमें सिद्धी प्राप्त नही हो पाती, जबकि योगमार्ग की साधना के पथ पर आगे बढने से पूर्व षट्कर्मो द्वारा शरीर का शोधन करने पर योगांगों में आसानी से सिद्धी प्राप्त होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्म अत्यन्त लाभकारी क्रियाए हैं जिनके अभ्यास से शरीर की अशुद्धिया एवं विकार दूर होते हैं तथा शरीर योगसाधना हेतु उपयुक्त बनता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

(1) सत्य/असत्य

क. षट्कर्म का उद्देश्य शरीर को शुद्ध करना एवं शरीर से विकृत वात, पित्त एवं कफ दोषों को बाहर निकालना है।

ख. हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में षट्कर्मों का वर्णन किया गया है।

ग. हठप्रदीपिका में प्राणायाम से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास का उपदेश किया गया है।

घ. सूत्र को नासिका में डालकर मुख से निकालना धौति कर्म है।

ड़. आधुनिक समय में नेति क्रिया को ENT Care क्रिया के नाम से जाना जाता है।

च. हठप्रदीपिका के अनुसार कपालभाति का अभ्यास कफ रोगों को दूर करता है।

(ख)रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

क. षट्कर्म शोधन की ..... क्रियाएं हैं।

ख. हठयोग साधना का प्रारम्भ ..... के शोधन से होता है।

ग. हठप्रदीपिका के अनुसार शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली षट्क्रियाएं ..... रखनी चाहिये।

घ. नौलि कर्म ..... की मांसपेशियों से सम्बन्धित अभ्यास है।

ड़. हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मो में छठा कर्म ..... है।

च. ..... को सोने की पेटी के समान महत्व देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये।

(3) बहु विकल्पीय प्रश्न

क. हठप्रदीपिका में षट्कर्मो का वर्णन किस उपदेश में किया गया है –

(a) प्रथम उपदेश (b) द्वितीय उपदेश
(c) तृतीय उपदेश (d) चर्तुथ उपदेश

ख. हठप्रदीपिका कार के अनुसार षट्कर्मों में श्रेष्ठ क्रिया है –

(a) धौति क्रिया (b) बस्ति क्रिया

(c) नेति क्रिया (d) नौलि क्रिया

ग.हठप्रदीपिका के अनुसार वस्त्रधौति में कितनी लम्बाई का कपडा प्रयोग किया जाता है –

(a) 15 हाथ, 4 अगुंल (b) 12 हाथ, 2 अगुंल

(c) 22 हाथ, 5 अगुंल (d) इच्छानुसार

घ. हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी धौति कर्म कितने भेदों का विवेचन करते हैं –

(a) आठ भेद (b) पांच भेद

(c) चार भेद (d) दो भेद

ड. भंवर के समान उदर को दाहिने से बांये ओर बांये से दांये घुमाने की क्रिया है –

(a) धौति क्रिया (b) नौलि क्रिया

(c) नेति क्रिया (d) बस्ति क्रिया

च.लोहार की धौंकनी के समान शीघ्रता से रेचक एवं पूरक करने की क्रिया है –

(a) कपालभाति किया (b) नौलि क्रिया

(c) नेति क्रिया (d) बस्ति क्रिया

6.6 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट करता है कि हठयोग में षट्कर्मों अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। योग साधक इन षट्क्रियाओं से अपनी साधना प्रारम्भ करता है। इन क्रियाओं का प्रधान उद्देश्य उच्चतर अभ्यासों के लिये शरीर को स्वच्छ, निर्मल एवं विकार रहित बनाना है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि घेरण्ड संहिता में तो सभी साधकों के लिये षट्कर्म करने का निर्देश दिया गया है किन्तु हठप्रदीपिका में केवल उन साधकों को ही षट्कर्म करने का निर्देश दिया गया है, जिनमें मेध, श्लेष्मा अथवा कफ दोष की अधिकता है। ऐसे साधकों को साधना के पथ पर आगे बढने से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास से शरीर शोधन का उपदेश किया गया है।

हठप्रदीपिका में षट्कर्म की प्रथम क्रिया के रुप में धौति क्रिया का वर्णन किया गया है। इसके वस्त्रधौति एवं गजकरणी क्रिया के रुप में दो भेद किये गये हैं। दूसरी क्रिया के रुप में बस्ति क्रिया का वर्णन आता है। षट्कर्म की तीसरी क्रिया के रुप में नेति क्रिया का उल्लेख किया गया है। नेति क्रिया के उपरान्त त्राटक कर्म का उपदेश किया गया है। षट्कर्म की पांचवी क्रिया के रुप में नौलि क्रिया का वर्णन करते हुए इसे आनन्द प्रदान करने वाली श्रेष्ठ क्रिया की संज्ञा दी गयी है। षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है। इस प्रकार हठप्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता दोनों ग्रन्थों में धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, और कपालभाति इन छः क्रियाओं का समान रुप में वर्णन किया गया है किन्तु घेरण्ड संहिता में इन छः क्रियाओं के भी अनेक भेद बताये गये है जबकि हठप्रदीपिका में इन कियाओं के भेद एवं उपभेद के स्थान पर मूल क्रिया का ही वर्णन किया गया है।

ये षट्कर्म त्रिदोष वात, पित्त एवं कफ में संतुलन स्थापित करते हैं। अतः न केवल अध्यात्मिक दृष्टि से वरन् व्यावहारिक जीवन भी दृष्टि से भी इनका अत्यन्त महत्व है। ये हमारे शरीर एवं मन दोनों को स्पष्ट बनाते हैं।

6.9 शब्दावली–

- षट्कर्म– शुद्धि की छः क्रियायें
- त्रिदोष– आयुर्वेद के अनुसार तीन दोष (i) वात (ii) पित्त (iii) कफ
- धौति– धोना या शुद्ध करना।
- कपालभाति– कपाल प्रदेश या ललाट का शुद्ध होना, प्रकाशित होना।
- भंवर– नदी की गोल लहरें
- प्रदिप्त– बढाना, वृद्धि करना

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. सत्य	क. छह	क. b
ख. असत्य	ख. शरीर	ख. d
ग. सत्य	ग. गोपनीय	ग. a
घ. असत्य	घ. उदर	घ. d
ड. सत्य	ड. कपालभाति	ड. b
च. असत्य	च. त्राटक	च. a

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. हठप्रदीपिका– स्वात्माराम कृत, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावाला, पुणे।
2. योग एवं यौगिक चिकित्सा–प्रो. रामहर्ष सिंह–स्वास्यवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

6.12 निबंधात्मक प्रश्न–

1 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मों की विधि एवं लाभ लिखिए।

इकाई–7 आसन– अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, आसनों का वर्गीकरण आसनों के सिद्धान्त, आसनों की उपयोगिता

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 आसन
  7.3.1 आसन का अर्थ
  7.3.2 परिभाषाएं
7.4 आसनों के उद्देश्य
7.5 आसनों का वर्गीकरण
7.6 आसनों के सिद्धान्त
7.7 आसनों की उपयोगिता
7.8 सारांश

7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों अपने अध्ययन के क्रम को क्रमशः आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है – आसन के स्वरूप, इसके विभिन्न प्रकार, सिद्धान्त, उपयोगिता इत्यादि के बारे में जानना।

जैसा कि आप जानते है कि चाहे बात अष्टांग योग की हो या हठयोग, दोनों में ही आसन को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वस्तुतः आसनों से हमारे अन्दर दृढ़ता एवं स्थिरता का विकास होता हैं। अतः शारीरिक एवं मानसिक रूप से शुद्ध होने के बाद एक योग साधक के लिए यह भी आवश्यक है, कि वह साधना के लिए लम्बे समय तक स्थिरता के साथ एक आसन में बैठ सके। जिससे कि उसकी साधना में प्रगति हो सके, अन्यथा उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा उपस्थित होती है, इसलिए महर्षि पंतजलि ने कहा है –

''स्थिरसुखमांसनम्'' – पा0 यो0 सू0 2/46

अर्थात् स्थिरता पूर्वक एवं सुख पूर्वक एक विशेष शारीरिक स्थिति में बैठने का नाम ही ''आसन' हैं।

पाठकों अब आप अनेक प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए उत्सुक हो रहे होंगे जैसे कि –

- आसन कितने प्रकार के होते हैं ?
- किसी भी आसन को करने की विधि क्या है ?
- आसन को करने से शरीर और मन पर क्या –क्या प्रभाव पड़ते हैं ?
- जिज्ञासु विद्यार्थियों अब हम आसनों के उद्देश्यों की चर्चा करेंगे –

7.2 उददेश्य

- आसन के अर्थ एवं परिभाषाओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- आसन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसनों के वर्गीकरण का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- आसनों के सिद्धान्त् को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसनों की उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

7.3 आसन

7.3.1 आसन का अर्थ – आसन शब्द पर यदि हम दृष्टिपात करें तो आसन शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत व्याकरण के अस् धातु से हुयी थी, जिसका अर्थ है बैठना, परन्तु यहां अस् के दो अर्थ बताए हैं। पहला जिस पर हम बैठते हैं और दूसरा हमारी शारीरिक स्थिति। पहले अर्थ के रूप में बैठने से आशय चटाई, मृग (हिरन) की छाल, चौकी, गद्दी इत्यादि पर बैठना बताया है।

दूसरे अर्थ में आसन् से आशय हमारी शारीरिक स्थिति से है, कि किस प्रकार हमारे हाथ–पैर अवस्था लिए हुए है। जैसे यदि हमारे शरीर की स्थिति धनुष के समान प्रतीत हो रही है तो इसे धनुरासन कहा जाएगा।

आसन का ये अर्थ शास्त्रीय ढंग से आपको बताया गया है, व्यवहारिक रूप से यदि आसन शब्द को समझे तो प्रत्येक मनुष्य को अपने कार्य को सम्पादित करने के लिए आसन की आवश्यकता होती है, वह आसन चाहे किसी विशेष स्थान पर बैठ कर कार्य करने से हो, अथवा मनुष्य के शारीरिक अवस्था हो। आसन की आवश्यकता होती है।

उदाहरण – व्यवहारिक जीवन में यात्रा के दौरान हम अनुभव करते है कि जिस वाहन में हम यात्रा करते है उसमें हमारा एक निश्चित आसन (बैठना) होता है तथा उस वाहन को चलाने वाले चालक का भी एक निश्चित आसन होता है (चालक की गद्दी)। तभी वह हमारी यात्रा को पूरा करने में समर्थ होता है।

''आसन'' शब्द। केवल मनुष्य मात्र के लिए ही प्रस्तुत नहीं होता है। प्रत्येक पशु–पक्षी, जीव–जन्तु तथा कीट पंतगे सभी के लिए भी प्रयुक्त् होता है, क्योंकि संसार में पाए जाने वाले प्रत्येक प्राणी का अपना एक आसन होता है।

प्रिय विद्यार्थियों अब तो आप आसन के अर्थ को समझ चुके होंगे, कि आसन क्या है। अब हम चर्चा करेंगे कि आसन को किन–किन ग्रंथों में परिभाषित किया गया है।

7.3.2 परिभाषाएं – हठ प्रदीपिका में आसन को परिभाषित करते हुए कहा है,

1. ''हठस्थ प्रथमाङ्.गत्वाहासनं पूर्वमुच्यते।
   कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाइ.गलाघवम्'' ।।
   – (हठ प्रदीपिका 1/17)

अर्थात् ''आसन, चूंकि हठ योग का पहला अंग है, अतः सर्वप्रथम इसका निरूपण करते है,

आसन (मानसिक और शारीरिक) स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन (का अनुभव) लाता है।''

हठ प्रदीपिका जो कि हठ योग का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है उसमें आसन को पहले अध्याय में रखा गया है एवं महत्वपूर्ण बताया है, इसमें बताया है आसन करने से मानसिक तथा शारीरिक स्थिरता प्राप्त होती है।

शारीरिक तथा मानसिक स्थिरता की बात इसलिए बतायी है कि आसन को श्वां स एवं प्रश्वाास के साथ किया जाता है, आसन को करने से शरीर से पसीने के रूप में गंदगी बाहर निकलती है जिसे शरीर में हल्काहपन आने लगता है तथा शरीर रोग मुक्त हो जाता है।

2.घेरण्ड संहिता के अनुसार –

''आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः।
चतुरशीत लक्षाणि शिवेन कथितानि च'' ।।1।।
''तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम्'' ।।2।।
– (घेरण्ड संहिता1/1,2)

अर्थात् संसार में जितने भी जीव–जन्तु है, उतनी ही संख्या आसनों की है, भगवान शिव ने पहले चौरासी लाख आसन कहे, उनमें से चौरासी आसन श्रेष्ठ है। उन चौरासी आसनों में भी बत्तीस आसनों को अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझना चाहिए।

इस परिभाषा में महर्षि घेरण्ड यही वर्णन कर रहे है कि जितनी योनियां इस पृथ्वी पर पायी जाती है उतनी ही संख्या आसनों की है जो भगवान शिव ने बतायी है परंतु इतने आसनों को कर पाना संभव नहीं है इसलिए महर्षि ने इनकी संख्या 84 बतायी है, परंतु इस आधुनिक जीवनशैली (व्यस्त जीवन शैली) के अनुसार भी अधिक है, इसलिए इनकी संख्या को बत्तीस बताया है और ये बत्ती्स आसन हमारे लिए शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अत्यधिक लाभकारी हैं।

3. तेजबिन्दु उपनिषद के अनुसार –

"सुखनेव भवेत् यस्मिन् जसश्रम ब्रहम चिन्तन।।"

अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक बैठकर ब्रहम का चिन्तन किया जाए, मन के ब्रहम में एकीकरण किया जाए। इस परिभाषा में आसन के विषय में यह स्पष्ट, किया जा रहा है कि आप जिस पर बैठे है और जो भी आपकी शरीर की स्थिति है उसमें कोई तनाव न हो एक सहज और सरल स्थिति हो। जिसमें बैठकर साधक परमपिता परमेश्वर को याद कर सके तथा स्वयं को उसके साथ जोड़ पाने में समर्थ हो सके।

4. श्रीमद्भगवत् गीता जो स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने अपने श्रीमुख द्वारा गायी है उसमें, उन्होंने आसन को परिभाषित करते हुए कहा है।

"तत्रैकागंमनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपबिश्यासेन युन्जयाद्योगमात्म विशुद्धये।।"

– (श्रीमद् भगवद् गीता 6/12)

अर्थात् उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

यहां भगवान आसन से तात्पर्य, साधक की शारीरिक स्थिति तथा जिस पर बैठा है दोनों की चर्चा कर रहे है वे कह रहे है कि साधक मन को शान्त कर अपनी इन्द्रियों (आँख, मुँह, नाक, जीह्वा और त्वचा) पर अपना नियंत्रण रखें, तथा अपने विचारों को शुद्ध बनाते हुए अपने को अन्दर से भी शुद्ध बनाइए और इनके लिए उन्होंने सीधे शब्दों में कहा कि योग का अभ्यास करें।

प्रिय पाठकों योग को पढ़ने के बाद आप इस बात से भलि–भॉति अवगत होंगे कि योग (वृक्ष) के अंतर्गत हठ योग भी आता है और आसन उसी का अंग है, तो इस परिभाषा को आप समझ रहे होंगे कि भगवान क्या कह रहे हैं।

5. भगवान श्री कृष्ण पुनः आसन को परिभाषित करते हुए कहते है –

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशाश्रानवलोयन्।।"

अर्थात् काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ।

इसमें बताया जा रहा है कि काया अर्थात् शरीर, सिर और गले को एक सीध में बिना हिलाए–डुलाए रखें, तत्पाश्चात् अपनी नाक के आगे वाले भाग पर लगाकर देखें और यही स्थिति आसन है।

6. योग के प्रणेता या जनक कहे जाने वाले महर्षि पंतजलि योग के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ में आसन को बहुत सरल रूप से परिभाषित करते हुए कहते है –

"स्थिर सुखमासनम्।" (साधनपाद 46 सूत्र)

अर्थात् सुख पूर्वक स्थिर रहना ही आसन है। यहां महर्षि ये ही बताना चाहते है कि साधक जिस भी स्थान पर जो भी शारीरिक स्थिति लिए हुए है वह एकाग्र हो, स्थिर हो, उसमें कम्पन्न् न हो और उसे उस स्थिति में प्रसन्नता हो वह खुश होकर उस अभ्यास को करें, तो यही आसन है।

7. चरण दास जी के अनुसार –

''चौरासी लाख आसन जानो, योनि की बैठक पहचानो।।''

अर्थात् चौरासी लाख जीव–जन्तु जिस अवस्था में बैठते है उसी स्वरूप को आसन कहा जाता है। इसमें ये बताया जा रहा है कि पृथ्वी पर जितने भी जानवर या कीट पंतगे है उनकी जो शरीर की अवस्थायें होती है उतने ही आसन कहे जाते है। उनके बैठने की स्थिति आसन है।

प्रिय विद्यार्थियों आप विभिन्न परिभाषाओं को पढ़ने के बाद ये समझ चुके होंगे कि आसन कितना महत्वपूर्ण शब्द है जिसको विभिन्न ग्रन्थों में हमारे ऋषियों ने परिभाषित किया है, आसनों का वर्णन हमारे ग्रंथों के अलावा वेद एवं पुराणों में भी हमें प्राप्त होता है।

जिज्ञासु पाठकों आसन के अर्थ एवं परिभाषाओं को पढ़ने के बाद अब आप जानने की सोच रहे होंगे कि इसके उद्देश्य क्या है, तो अब हम आगे इसके उद्देश्यों को विस्तारित ढंग से बताएंगे।

7.4 आसनों के उद्देश्य

आसनों के उद्देश्य को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से बता सकते है जो इस प्रकार है –

उद्देश्य –

1– आसन को करने का सबसे पहला उद्देश्य जो माना जाता है वो शरीर में सुधार करना होता है। आजकल जो आसन को करने का प्रचलन है उसका मुख्य उद्देश्य यही रहता है कि किस प्रकार अपने शरीर का सुधार कर पाए अर्थात् यदि शरीर में किसी भी जगह अतिरिक्त चर्बी है तो उसे कैसे हटाया जाए तथा जो कमजोर व्यक्तित्व वाले है वे किस प्रकार स्वयं को संतुलित कर पाए अर्थात् सुडौल बना पाए, और छरहरा और सुडौल शारीरिक स्थिति सभी को पसंद है।

2– आसन को करने वाला मनुष्य जल्दी तनाव युक्त नहीं होने पाता। आसन को हमेशा श्वास प्रश्वास के साथ संतुलित और सकारात्मक मनोस्थिति के साथ महसूस करते हुए करवाया जाता है, जिससे हमारे सभी हार्मोन्स पूर्ण रूप से हमारे शरीर में स्त्रावित होते है, और हार्मोन्स यदि सही ढंग से स्त्रावित नहीं होते तभी मन स्थिति खराब या तनाव मुक्त होती है। ये भी आसन को करने का मुख्य उद्देश्य माना जाता है।

3– आसन को करने से एक आनंद की अनुभूति तो होती है। शुरूआती तौर पर आसन करने में भले ही साधक को दर्द का अनुभव हो किन्तु जब वह आसन को अपना दिनचर्या का अंग बना लेता है तो उसके कार्यों में भी उत्साह की झलक देखने को मिलती है जिससे वह आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है।

4– अपने शरीर व मन में समन्वय स्थापित करना, जिससे की साधक की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो सके। हमारा शरीर और मन दोनों ही एक दूसरे के पूरक है यदि मन स्वस्थ एवं प्रसन्न् होता है तो शरीर में कोई भी कीटाणु हमला नहीं कर पाते, जिससे हमारा स्वास्थ्य स्वस्थ रहता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

5– आसन को करने का उद्देश्य यह भी रहता है जिससे हमारा नाड़ी संस्थान स्वस्थ रहे। नाड़ी संस्थान को ही शरीर का मुख्य तंत्र माना जाता है क्योंकि शरीर में होने वाली गतिविधियों के लिए यही जिम्मेदार होता है। दूसरा उद्देश्य इसका आध्यात्मिक दृष्टि से भी माना जाता है अर्थात् आसन को करने से साधक स्वयं को आगे बढ़ाने में समर्थ हो पाता है धारणा और ध्याान के लिए स्वयं को तैयार कर पाता है।

6– शरीर व मन में होने वाली अस्थिरता को दूर करने के लिए व स्वयं को शान्त एवं एकाग्र बनाने के लिए भी आसन का अभ्याास किया जाता है।

7– चित्त में उठने वाले विचारों को कम करने के लिए, अपने असंतुलित व्यवहार को संतुलित एवं अच्छा बनाने के लिए, भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए आसन का अभ्यास बहुत ही महत्वपूर्ण है।

8– स्वयं को पूर्णरूप से स्थिर और स्वस्थ रखने के लिए आसन का अभ्यास बहुत आवश्यक है, आसन को करने का ये उद्देश्य भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है कि जो व्यक्ति शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक स्तर भी स्वस्थ होता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को समाज में एक अच्छी छवि से देखना चाहता है।

9– आसन का जो सबसे मुख्य उद्देश्य यदि देखा जाए तो कुण्डिलनी के जागरण एवं विकास के लिए आसन बहुत आवश्यक है।

10– अतः यदि देखे तो आासन का उद्देश्य स्वयं को स्वस्थ बनाना एवं स्वयं की एक अच्छी छवि बनाना चाहे व सांसारिक स्तर पर हो या पारलौकिक स्तर पर माना जाता है।

पाठकों आसन के उद्देश्यों को विस्तृत रूप से पढ़ने के बाद आप सभी जान गए होंगे कि आसन प्रत्येक जन सामान्य के लिए कितना आवश्यक हो गया है। अब आगे हम आसनों के वर्गीकरण का अध्ययन कर सकेंगे कि आसनों को किस प्रकार से बांटा गया है।

7.5 आसनों का वर्गीकरण

महर्षि घेरण्डं के अनुसार आसनों को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं–

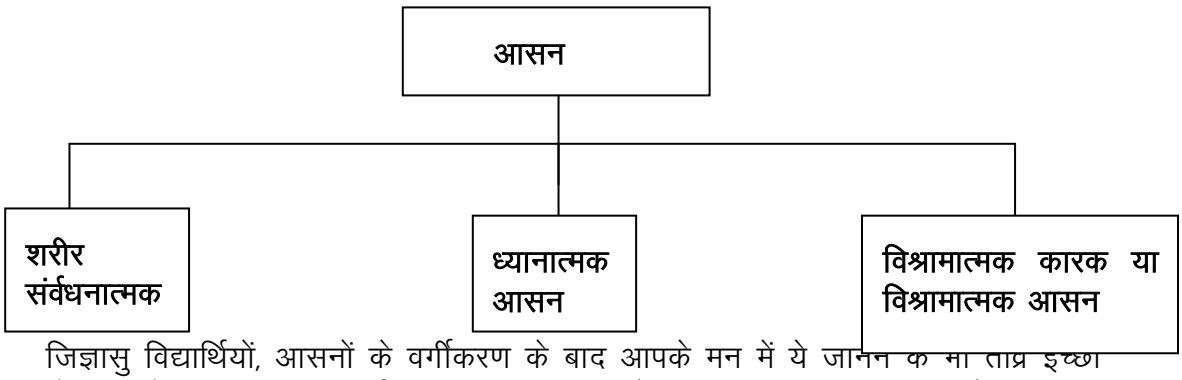

जिज्ञासु विद्यार्थियों, आसनों के वर्गीकरण के बाद आपके मन में ये जानने की भी तीव्र इच्छा हो रही होगी कि शरीर सवर्धनात्मक, ध्यानात्मक और विश्रामात्मक आसन क्या है एवं किन आसनों को इनमें रखा जाता है ? तो अब आप प्रत्येक आसन से भलि प्रकार परिचित हो सकेंगे आसनों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार से बताया जा रहा है –

1– शरीर संर्वधनात्मक आसन – शरीर संर्वधनात्मक (शरीर का विकास करने वाले) मांसपेशियों में खिंचाव हो, जिन्हें करने के बाद रक्त संचार बढ़े तथा शरीर में सुडौलता आने लगे, शरीर मजबूत और क्रियाशील प्रतीत होने लगे, आदि। कुल मिलाकर हम ये कह सकते है, कि जिन आसनों को करने से हमारे शरीर का विकास हो, शरीर सुंदर एवं कांतिमान प्रतीत हो, शरीर में मजबूत एवं खुला हुआ महसूस हो वही शरीर सवर्धनात्मक आसन है। इसके अर्न्तगत महर्षि घेरण्ड ने जिन आसनों का वर्णन किया है वह निम्न प्रकार के है–

1) गोमुखासन
2) धनुरासन
3) मत्स्यासन
4) मत्स्येन्द्रासन
5) पश्चिमोतानासन
6) उत्कट आसन
7) मयूरासन
8) सिंहासन
9) कुक्कुटासन
10) कूर्मासन
11) मण्डुकासन
12) उत्तान मण्डुकासन
13) वृक्षासन
14) गरूड़ासन
15) शलभासन
16) उष्टासन
17) भुजंगासन
18) उत्तानकूर्मासन
19) संकट आसन

ये आसन शरीर संवर्धानात्मक आसन कहे जाते है।

1– ध्यानात्मक आसन – जिन आसनों को करने पर मन की अवस्था स्थिर एवं एकाग्र हो जाए, किसी प्रकार की गतिशीलता उनमें न दिखाई दे, अर्थात साधक जिन आसनों में बैठकर सहजता का अनुभव करें, उन आसनों में बैठकर वह स्वयं को ध्यान को करने के लिए तैयार कर ले वही ध्यानात्मक आसन है इन आसनों के अर्न्तगत आने वाले आसन निम्नवत् है –

1) सिद्धासन/सिद्धयोनी आसन
2) पद्मासन
3) भद्रासन
4) मुक्तासन
5) स्वस्तिकासन

इन आसनों को घेरण्डं संहिता में ध्यानात्मक आसनों के नाम से जाना जाता है।

2– विश्रान्तिकारक या विश्रामात्मक आसन – विश्राम से तात्पर्य आराम से है अर्थात जिन आसनों को करने पर शरीर आराम का अनुभव करें, वही आसन विश्रान्तिकारक या

विश्रामात्मक आसन कहे जाते है इन आसनों को करने में शरीर को किसी प्रकार का कष्ट नहीं करना पड़ता, अपितु ये आसन सभी व्यक्ति आसानी से कर सकते है जब शरीर संवर्धनात्मक आसन को करने पर आपर्थक जाते है तो विश्रामात्मक आसन में आकर ही स्वयं को सामान्य़ बनाते है। इसके अर्न्तगत जिन आसनों का वर्णन है वह है यथा –

1) शवासन
2) मकरासन

ये वर्गीकरण घेरण्ड संहिता के अनुसार बताया गया है। प्रिय विद्यार्थियों आसनों के विस्तृत वर्णन को पढ़ने के बाद आप ये जान गये होंगे कि आसनों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है। परन्तु इसके अलावा इसके दूसरे उपप्रकार का वर्गीकरण स्वाामी श्री सत्यानन्द सरस्वती के द्वारा भी किया गया है जो इस प्रकार है आप स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के अनुसार आप आसनों के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।

आसनों का वर्गीकरण

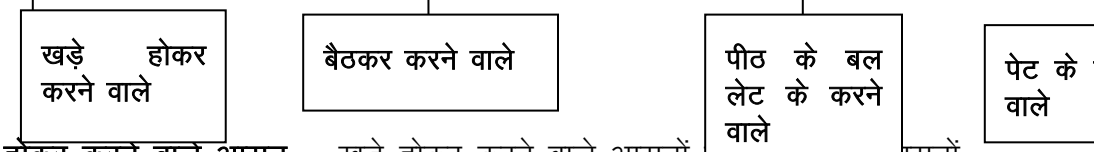

1) खड़े होकर करने वाले आसन – खड़े होकर करने वाले आसनों से तात्पर्य उन आसनों से है जिनमें खड़े होकर आगे को झुकने वाले, पीछे को झुकने वाले, दाहिनी दिशामें मुड़ने वाले तथा बायीं दिशा में मुड़ने वाले, खड़े होकर ही ऊपर को जाने वाले इत्याादि आसन आते है ये आसन है –

i. गरूड़ासन
ii. नटराज आसन
iii. ताड़ासन
iv. तिर्यकताड़ासन
v. कटि चक्रासन
vi. पाद हस्ता़सन
vii. त्रिकोण आसन
viii. चन्द्रासन आदि

2) बैठ कर करने वाले आसन – बैठ कर करने वाले आसनों में बैठकर कमर को आगे एवं पीछे खींचने वाले अभ्यास आते है इसके अलावा भी बैठकर करने वाले अभ्यासों में ध्यानात्मक आसन भी आते है, बैठ कर करने वाले आसनों का विवरण किया जा रहा है –

i. पश्चिमोतान
ii. उष्ट्रासन
iii. सिद्धासन
iv. पद्मासन
v. बद्ध पद्मासन
vi. अर्द्धबद्ध पश्चिमोतानासन

vii. मत्स्येन्द्रासन
viii. गोमुखासन आदि

3) पीठ के बल लेटकर करने वाले आसन – पीठ के बल लेटकर करने वाले आसनों के अंतर्गत निम्न आसनों को रखा जाता है।

i. हलासन
ii. कर्णपीड़ासन
iii. सर्वांगासन
iv. कन्धरासन
v. उत्तानपादासन
vi. शवासन
vii. पादांगुष्ठनासास्पर्श
viii. मरकट आसन आदि

4) पेट के बल लेटकर करने वाले आसन – पेट के बल लेटकर करने वाले आसनों में साधक को पेट के बल लेटना पड़ता है उसके बाद ही वह आसन करता है। पेट के बल लेटकर करने वाले आसनों के अंतर्गत निम्न आसन आते है –

i. भुजंगासन
ii. धनुरासन
iii. शलभासन
iv. बालासन इत्यादि

जिज्ञासु विद्यार्थियों आसनों के विस्तृत वर्गीकरण से आप समझ गए होंगे कि आसनों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है, परन्तु अब आपके मन में ये प्रश्न उठ रहा होगा कि आसन करने के क्या सिद्धान्त है, तो अब आसनों के सिद्धान्तो की चर्चा करते है।

7.6 आसनों के सिद्धान्त

1. जब भी आप आसन को शुरू करें तो सर्वप्रथम एक साफ सुथरे, शीलनमुक्त, हवादार एवं प्रकाश युक्त कमरे का ही चयन करें। कमरा एकान्त स्थान पर हो तो ज्यादा अच्छा होगा। जिससे आसन को करने में एकाग्रता बनी रहेगी।
2. आसन हमेशा धीरे–धीरे एवं सहजता से शुरू करें, आसनों को करने में जल्दबाजी बिल्कुल भी न करें, आसनों को करने के क्रम में सरल अभ्यासों से कठिन अभ्यासों का ही होना चाहिए।
3. आसनों को कभी प्रतियोगिता की दृष्टि से नहीं करना चाहिए अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार ही अभ्यास करना चाहिए।
4. आसनों के अभ्यास के दौरान कमरे में रहे है तो वह धूप दीप इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं, जिससे शारीरिक स्थिति के साथ साधक की मनोस्थिति में भी परिवर्तन होता है। परंतु ध्यान रखें धूप हल्की सुगन्ध वाली ही हो।
5. आसनों को करने से यदि आपका पसीना निकल रहा है तो उसे तौलिए या रूमाल से पोछने के बजाय शरीर पर ही रगड़ ले। जिससे आपकी कोशिकाएं और अधिक क्रियाशील होंगी। यदि पसीना बहुत ज्यादा मात्रा में निकल रहा हो तो स्वच्छ एवं धुले तौलिए का प्रयोग कर सकते हैं।

6. आसनों का अभ्यास करने से पूर्व यदि षट्कर्मो (धौति, वस्ती, नेति, नौलि, त्राटक और कपाल भॉति) का अभ्यास कर लिया जाए, तो शरीर से गन्दगी बाहर निकल जाती है। जिससे आसन करने में सहजता होती है।
7. आसनों को करने के बाद प्राणायाम परम आवश्यक है। क्योंकि आसनों को करने से शरीर की बहुत अधिक ऊर्जा खर्च होती है, तो ऊर्जा को पुनः लाने के लिए हमें प्राण तत्व (आक्सीजन) की आवश्यकता होती है, जो हमें प्राणायाम को करने से प्राप्त होती है।
8. शास्त्रों में आसनों को करने का समय प्रातः काल का ही बताया गया है, इसलिए आसनों को प्रातः काल ही करें, यदि प्रातः काल के समय आसन करने में असमर्थ है तो सांय काल के समय में भी आसनों को किया जा सकता है, परन्तु ध्यान देने योग्य बात ये है कि भोजन और आसनों के क्रम में 4 से 5 घंटे का अन्तराल हो तथा सांय काल शौच के बाद ही अभ्यास करें तो स्वास्थ की दृष्टि से अच्छा रहेगा।
9. जिस समय भी आसन करते है तो इस बात को अवश्य ध्यान रखें, कि प्रत्येक आसन के बाद कुछ देर विश्राम अवश्य करें। ये आपके आसन पर निर्भर करता है कि किस श्रेणी का अभ्यास आप कर रहे है तत्पश्चात् उसी के अनुसार विश्राम करें।
10. आसनों के अभ्यास में यदि आगे झुकने वाले अभ्यास कर रहे है तो उसके बाद पीछे झुकने वाले अभ्यास भी अवश्य करें, इसके विपरीत यदि पीछे झुकने वाले अभ्यास करते है तो आगे झुकने वाला अभ्यास भी अवश्य करें।
11. अभ्यास के समय ढीले–ढाले वस्त्रों का ही प्रयोग करें और यदि सूती वस्त्रों का प्रयोग कर रहे है तो यह बहुत अच्छा रहेगा। लेकिन एक ध्यान देने योग्य बात ये भी है कि वस्त्रों को मौसम के अनुकूल ही इस्तेमाल करें।
12. आसनों को कभी भी जमीन में ऐसे ही न करें, जब भी आप आसन करें तो जमीन पर कोई कम्बल, चटाई अथवा चादर का प्रयोग अवश्य करें।
13. आसनों को करते समय कोई भी दबाव देने वाली वस्तु आपके शरीर पर न हो जैसे – अंगूठी, घड़ी, बैल्ट और बैण्ड। अन्यथा रक्त का संचार पूर्ण रूप से पूरे शरीर में नहीं हो पाएगा।
14. यदि आसनों का अभ्यास आप बहुत लोगों के साथ करते है तो इस बात का भी ध्यान रखें कि अभ्यास के दौरान आपका शरीर दूसरे व्यक्ति से न टकराए। इससे आपकी और उसकी ऊर्जा में रूपान्तरण होने लगता है, एवं आसन करने में असहजता होती है।
15. आसन करने के तुरंत बाद स्नान नहीं करना चाहिए। जब पसीना सूख जाए तत्पश्चात् आप स्नान कर सकते है।
16. आसनों के अभ्यास को खाली पेट ही करना चाहिए।
17. टी0बी0 (टेलीवीजन) या पुस्तकों में देखकर कभी भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। जब भी आप अभ्यास करने जा रहे है तो किसी जानकार व्यक्ति की सलाह अवश्य ले। इसे आप आसनों को अच्छी तरह से कर पाएंगे।

जिज्ञासु पाठकों आसनों के सिद्धान्तों के विस्तृत वर्णन को अब आप समझ गए होंगे यदि आप इन सिद्धान्तों को ध्यान रखते हुए आसनों का अभ्यास शुरू करते है तो निश्चित ही आपको इनका लाभ प्राप्त होता है।

अब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आसनों से किस प्रकार लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रश्न के निराकरण के रूप में इनके लाभ या उपयोगिता का वर्णन बताया जा रहा है।

7.7 आसनों की उपयोगिता

आसनों का प्रभाव हमारे संपूर्ण शरीर पर सकारात्मक रूप से पड़ता है आसनों से शरीर में पड़ने वाले प्रभाव इस प्रकार बताए जा रहे है –

1. प्रातः काल यदि गुनगुने पानी के सेवन के बाद हम एक दो आसनों को तेज गति से करके मल त्याग करने के लिए जाए तो ऑते भलि–भॉति साफ हो जाती है। इससे हमारा उत्सर्जन तंत्र स्वस्थ रहता है।
2. आसनों के अभ्यास से शरीर के सभी पाचक रस पूर्ण रूप से निकलने लगते है जिससे लिए गए भोजन का पाचन भलि प्रकार होता है इससे हमारा पाचन तंत्र स्वस्थ्य रहता है।
3. आसनों के नियमित अभ्यास से मांस पेशियां लचीली बनी रहती है, अनैच्छिक पेशियों पर तो हमारा बस नहीं होता किन्तु ऐच्छिक पेशिया अपने कार्य को भलि प्रकार से करती है। जिससे हमारा मांसपेशिय संस्थान स्वस्थ्य एवं क्रियाशील रहता है।
4. कंकाल तंत्र पर भी आसनों का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आसनों को प्रतिदिन करने से अस्थियां मजबूत होती है तथा शरीर की निश्चित आकृति बनी रहती है।
5. आसनों को करने से शरीर की गति बढ़ती है जिससे हमारा हृदय तीव्र गति से कार्य करता है, इसी कारण संपूर्ण शरीर में ऊर्जा आने लगती है परन्तु जैसे ही विश्रामात्मक आसन कराया जाता है तब शरीर स्थिर होने लगता है, जिससे हमारा हृदय की बढ़ी हुई गति सामान्य हो जाती है, और हमारा रक्त परिसंचरण तंत्र स्वस्थ होने लगता है।
6. नियमित रूप से अभ्यास करने पर सभी हार्मोन्स सही मात्रा में शरीर से निकलने लगते है जिससे आपके शरीर का विकास अच्छे से होने लगता है।
7. आसनों को करने से शरीर की गंदगियां पूर्णरूप से बाहर निकलने लगती है जैसे – पसीने एवं मूत्र का भलिभॉति बाहर आना।
8. आसनों को करने से न केवल बाह्य अंग अपितु आन्तरिक अंग भी स्वस्थ्य एवं मजबूत रहते है तथा अपने कार्यों को स्वभाविक ढंग से कर पाते है।
9. शरीर में बड़ी अतिरिक्त चर्बी को भी अभ्यासों (आसन के द्वारा) के द्वारा कम किया जाता है, जिससे आपका शरीर एक स्वाभावित आकृति को प्राप्त कर सकें।
10. नियमित योगाभ्यास अर्थात आसनों के करने शरीर और मन दोनों ही स्वस्थ रहते है। जिससे आप अपने कार्यों को व्यवस्थित ढंग से करने में सक्षम होते है।
11. योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति में सकारात्मक ऊर्जा अधिक मात्रा में दिखाई देती है। वह अपने प्रत्येक क्रिया को करके आनन्द का अनुभव करता प्रतीत होता है।
12. आसनों को नियमित करने वाले व्यक्ति सुडौल, मजबूत एवं क्रियाशील प्रतीत होते है।

13. आसनों को करने से शारीरिक क्षमता एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता दोनों ही बढ़ती है। जिससे शरीर जल्दी रोगग्रस्त नहीं होने पाता एवं स्वस्थ रहता है।
14. आसनों के प्रतिदिन अभ्यास से मनुष्य को संपूर्ण स्वास्थ्य तो प्राप्त होता है अपितु दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. आसन का अर्थ होता है –
   क. खड़े होना
   ख. सोना
   ग. शरीर का निश्चित अवस्था में बैठना
   घ. कोई नहीं
2. आसनों के नियमित अभ्यास से होता है –
   क. शरीर मोटा एवं भद्दा
   ख. कमजोर
   ग. मजबूत एवं आकर्षक
   घ. सभी
3. आसनों की निश्चित संख्या का वर्णन किया गया है –
   क. हठ प्रदीपिका
   ख. रामायण
   ग. पंतजलि योग सूत्र
   घ. महाभारत
4. सामान्यतः आसनों को वर्गीकृत किया गया है –
   क. महर्षि घेरण्ड
   ख. स्वात्मा राम सूरी
   ग. भगवान शिव
   घ. भगवान श्री कृष्ण

7.8 सारांश

प्रिय पाठकों इस इकाई में आपने आसनों को भलिभाँति समझा एवं पढ़ा। अब आप आसनो के महत्व को समझ गए होंगे। आसनों का वर्णन पूर्व से ही विभिन्न महत्वपूर्ण ग्रंथों से चला आ रहा है और आज चिकित्सकीय पक्ष के रूप में सामान्य व्यक्ति भी अपने दैनिक जीवन में अपना रहा है। स्वात्माराम सूरी एवं महर्षि घेरण्ड से लेकर आधुनिक समय में सत्यानन्द सरस्वती एवं बाबा रामदेव भी इस पर विशेष महत्व डाल रहे है। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर चुस्त दुरूस्त एवं फुर्तीला बनने लगता है तथा व्यक्ति की रोग प्रति रोधक क्षमता बढ़ने लगती है।

7.9 शब्दावली

- दृढ़ता – मजबूत
- साधना – आत्म विश्लेषण या आत्म मूल्यांकन करना
- अष्टांग – आठ अंग
- प्रश्वांस – वायु को नासिका से बाहर निकालना

- समन्वय – ताल–मेल
- संवर्धन – विकास

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ग
3. क
4. ग
5. ग

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति
2. महर्षि घेरण्ड (स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती) घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
3. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. आसन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विविध परिभाषाओं के माध्यम से समझाइए ?
2. आसनों के सिद्धान्त व लाभ बताए ?
3. आसनों का वर्गीकरण करते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए ?

इकाई– 8 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि सावधानियॉ व लाभ स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन

8.1 – प्रस्तावना
8.2 – उद्धेश्य
8.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित 5 आसनों की विधि सावधानियॉ व लाभ
  8.3.1 – स्वस्तिकासन – विधि, सावधानियॉ, लाभ
  8.3.2 – गोमुखासन – विधि, सावधानियॉ, लाभ
  8.3.3 – वीरासन – विधि, सावधानियॉ, लाभ
  8.3.4 – कूर्मासन – विधि, सावधानियॉ, लाभ
  8.3.5 – कुक्कुटासन – विधि, सावधानियॉ, लाभ
8.4 – सारांश
8.5 – शब्दावली
8.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 – निबंधात्मक प्रश्न

8.1 – प्रस्तावना –

योग विद्या भारतीय संस्कृति की बहुत ही प्राचीन विधा है। जो हमें हमारे ऋषि मुनियो द्वारा प्रदान की गयी है। योग की धारा पवित्र गंगा की लहरो के समान है, जैसे गंगा मॉ अपने वेग से समस्त विषाक्त द्रव्यो एवं पदार्थो को सदा के लिए समुद्र में विलीन कर देती है, उसी तरह योग की अमृतमय धारा सम्पूर्ण शरीर के रोगों को दूर कर समग्र स्वास्थ प्रदान करती है। योग तो उस कल्प वृक्ष के समान है, जिससे साधक अपने मनोरूप इच्छा प्राप्त कर सकता है। आज योग के द्वारा अगर रोगों को समाप्त करने की बात कही जाए तो योग की सबसे महत्तपूर्ण शाखा हठयोग ही रही है। जिसमें शरीर को स्वस्थ रखने की अनेक पक्षो को बताया गया है। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण पक्ष आसन का है। आसनो की चर्चा यदि की जाए तो अनेकानेक आसनों का वर्णन ग्रन्थों में किया गया है, किन्तु स्वात्माराम सूरी जी ने केवल 15 आसनों का वर्णन किया है। आसन देखने में जितने सहज और सरल प्रतीत होते है। उन्हें करने में उतनी ही सावधानियॉ रखनी पड़ती है। प्रिय विद्यार्थियों स्मरण रहे कि आसन की प्रत्येक विधि को भली – भांति सीखकर ही अभ्यास को प्रारम्भ करें।

8.2 उद्धेश्य

- हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आसनों से परिचित हो सकेंगे।
- आसनों की विधि, लाभ व सावधानियों को समझ सकेंगे।
- प्रत्येक तन्त्र पर आसन किस तरह प्रभावकारी है, इससे भी भली – भांति परिचित हो सकेंगे।
- वर्तमान परिपेक्ष्य में आसन की उपयोगिता को जान सकेंगे।

8.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित 5 आसनों की विधि सावधानियॉ व लाभ

प्रिय विद्याार्थियों आसन शब्द तथा आसनों के बारे में आप पूर्व से भर परीचित होगें। पिछली इकाई में आपने आसन के अर्थ, परिभाषा, वर्गीकरण इत्यादि का अध्ययन किया। सम्भवतः आप आसन को अच्छी तरह समझ चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कर सकेंगे। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम सूरी जी ने सिर्फ 15 आसनों का वर्णन किया है, और इन्होने इन 15 आसनों को ही महत्तवपूर्ण माना है। आसनों की संख्या प्रत्येक ग्रन्थों में अलग – अलग बतायी गयी है। इसलिए आप आसन के विषय में मतभेद न करें। प्रत्येक ग्रन्थों ने अपने अनुसार आसनों का वर्णन किया है। अब आप हठप्रदीपिका में वर्णित 5 आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

8.3.1 – स्वस्तिकासन :–

"जानूव्रेरन्तरे सम्यक्कृतवा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते।।" – 1/19।।

अर्थात् दोनों पॉव के तलुवे को (एक दूसरे के विपरीत) घुटना और जंघा के बीच में अच्छी तरह स्थापित कर शरीर को सीधा रखकर संतुलित रूप में बैठना, इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम दोनों पैरो को सामने की ओर रखते हुए बैठते है।

- दोनों हाथ जंघाओ के दांए – बांए तथा कमर को सीधा रखते है।
- तत्पश्चात् दांए पैर को घुटने से मोड़ते हुए बायी पिण्डली और जंघा के मध्य इस तरह से फसाते है, कि अंगुलियां पिण्डिलियो में छिपी रहे और अंगूठा बाहर दिखता रहे।
- अब बाए पैर को भी दाए पैर के नीचे से निकालते हुए दायी जंघा और पिण्डली में ऐसे फंसाते है, कि अंगूठा बाहर से दिखाय दे।
- अब दोनों हाथ ध्यान मुद्रा में रखते हुए आंखो को सहजता से बन्द करते है और श्वास पर एकाग्रता बनाते है।
- हठ प्रदीपिका की यही विधि वर्तमान में भी प्रचलित है।

सावधानियॉ –

- साइटिका रोग से ग्रसित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।
- जिन भी व्यक्तियों स्पाइनल कोर्ड (रीढ़ की हड्डी) के निचले भाग में यदि दर्द हो तब भी यह अभ्यास वर्जित है।
- जो लोग इस आसन में बैठने में सहजता महसूस नहीं करते वे लोग पहले सुखासन में ही बैठे, तत्पश्चात् इस आसन को प्रारम्भ करे।
- आसन को कभी भी जबरदस्ती करने का प्रयास न करे।
- आसन का अभ्यास कभी भी पुस्तक में पढ़कर न करे उचित मार्ग दर्शन प्राप्त होने पर ही अभ्यास को शुरू करे।
- इस आसन को करते समय एक बात का हमेशा याद रखे, कभी भी दूसरों को देखकर जबरदस्ती अभ्यास न करे, धीरे – धीरे अभ्यास की पूर्णता तक जाए।

लाभ –

- मन की एकाग्रता को बढ़ाने के लिए लाभकारी अभ्यास है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से रक्त का प्रवाह मेरूदण्ड की तरफ होने लगता है।
- मेरूदण्ड की स्थिरता को बनाए रखने में सहायता करता है।
- ध्यान, साधना एवं आध्यात्मिक मार्ग की प्रगति में सहायक है।
- इस आसन की नियमित रूप से करने पर सुषुम्ना द्वार अल्प काल में खुलने लगता है।

8.3.2 – गोमुखासन :–

"सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपाश्र्वे नियोजयेत्।
दक्षिणऽपि तथासव्यं गोमुखं गोमुखाकृति।।" – 1/20।।

अर्थात् दाहिनी एड़ी को कटि के वाम भाग में तथा उसी प्रकार बायें (एड़ी) को कटि के दायें भाग में रखकर गाय के मुख के समान आकृति बनाने से गोमुखासन होता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम दोनो पैरो को सामने फैलाकर कमर को सीधा करते हुए बैठते है, तथा दोनो हाथो को जंघाओं के दोनो ओर रखते है।
- अब दाए पैर को घुटने से मोड़ते हुए बांए नितम्ब के पास रखते है।
- तत्पश्चात् बांए पैर को भी घुटने से मोड़ते हुए दांए नितम्ब के पास रखते है।
- अब ये ध्यान रखेंगे कि जो पैर ऊपर है, उसी हाथ को कंधे के पीछे लेकर जाएगे, तथा जो पैर नीचे है, वह हाथ नीचे से पीछे की तरफ ले जायेगे।
- अब दोनों हाथों को परस्पर आपस में लॉक करेंगे।
- सहजता से आंखे बन्द करेंगे एवं लम्बे गहरे श्वसन करेंगे।
- अभ्यास को दोहराने के लिए यही प्रक्रिया दूसरे पैर से भी करेंगे।

नोट – वर्तमान विधि एवं पारम्परिक विधि परस्पर पूर्णतः मेल नहीं खाती है। वर्तमान विधि में हाथों को आपस में लॉक करने की बात भी कही गयी है, जो पारम्परिक विधि में नहीं है।

सावधानियॉ –

- जिन लोगों को घुटने में दर्द हो वे लोग इसका अभ्यास न करें।
- कन्धों के दर्द पीड़ित व्यक्ति बजरदस्ती हाथों को आपस में लॉक न करे, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना ज्यादा होगी।
- किताबों से पढ़कर कभी भी किसी आसन का अभ्यास न करें।
- आसनों को प्रतियोगात्मक भावना से नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- इस आसन के अभ्यास से फेफड़ों की मांशपेशियॉ मजबूत होती है।
- जिन लोगो को लिखते समय परेशानी होती है, उन लोगों को इस आसन से बहुत लाभ मिलता है।
- ब्रोंकाइटिस और अस्थमा के रोगी को इस आसन में बैठकर लम्बे गहरे श्वसन का अभ्यास करने से फेफड़ों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।
- इस आसन को करने से पैरो में आया कड़ापन धीरे – धीरे खत्म होने लगता है।
- सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस की प्रारम्भिक अवस्था में इस आसन को करने से रोग में आराम मिलता है।

8.3.3 – वीरासन :–

"एकं पादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरूणि स्थिरम्।
इतरस्मिस्तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।।" – 1/21

अर्थात् एक पॉव को दूसरी जंघा पर तथा दूसरे पॉव को अन्य जंघा के नीचे रखने से वीरासन होता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम व्रजासन की स्थिति में बैठते है। व्रजासन में दोनो को घुटनो से मोड़कर तलवों पर नितम्बो (hips) को स्पर्श करते है।

- तत्पश्चात् दांए पैर को ऊपर उठाकर (घुटने से) दाहिने पंजे को बांए घुटने के भीतरी भाग से स्पर्श करते है।
- अब दाहिने हाथ की कोहनी को मोड़ते हुए घुटने के ऊपर रखते है, तथा दाहिनी हथेली को ठोड़ी (Chin) पर रखते है।
- बांए पैर को ब्रजासन की स्थिति में ही बाहर की ओर बांए नितम्ब से स्पर्श करते है।
- अब आंखों को सहजता से बन्द कर मन को विश्राम देते है, तथा अपनी कमर एवं गर्दन को भी एक सीध में बनाए रखते है।
- अभ्यास की पुनरावृत्ति के लिए यही प्रकिया को दूसरी ओर से भी दोहराते है।

सावधानियॉ –

- जब तक शरीर सामान्यतः जमीन पर बैठने में समर्थ नहीं है, तब तक इसका प्रयास जबरदस्ती न करें।
- जोड़ों में दर्द होने पर भी इसका अभ्यास न करें।
- कुशल मार्ग दर्शन में आसन को करे अन्यथा न करें।
- पुस्तको से पढ़कर तो बिल्कुल भी अभ्यास न करें।
- अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार ही आसन करें।

लाभ –

- इस को नियमित रूप से करने पर मन शान्त, सन्तुलित एवं एकाग्र होता है।
- यह अभ्यास मानसिक स्तर के साथ – साथ शारीरिक स्तर पर भी लाभ पहुॅचाता है। इसका अभ्यास यकृत, वृक्क एवं आमाशय पर भी सकारात्मक लाभ पहुॅचाता है।
- जो लोग बज्रासन करने में स्वयं को असमर्थ महसूस करते है, वे आसन को करके बज्रासन के लाभ प्राप्त कर सकते है।
- मन की उत्तेजना को शान्त करता है, तथा तन्त्रिका तन्त्र को भी क्रियान्वित करता है।
- आध्यात्मिक पथ में प्रगति के लिए एक अच्छा अभ्यास माना गया है।

8.3.4 – कूर्मासन :–

"गुदं निरूध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।
कूर्मासन भवेदेतदिति योगविदो विदुः।।" – 1/22।।

अर्थात् दोनों पावो की एड़ी पर गुदा को रखकर (एड़ी में गुदा को दबाते हुए) तथा (पावो के) अग्रभाग को बाहर की ओर फैलाकर रखना, इसे योग के जानकार कूर्मासन कहते है।

नामकरण – कूर्म से आशय कछुए से होता है, जो कि एक संस्कृत शब्द है। इस आसन में व्यक्ति विशेष की शारीरिक स्थिति कछुए के समान प्रतीत होती है। इसलिए इसे कूर्मासन कहा जाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठते है।

- तत्पश्चात् दोनों घुटनों को थोड़ा मोड़ते हुए हाथों को घुटनों के नीचे से बाहर निकालते है।
- अब धीरे – धीरे कमर को आगे की ओर झुकाते है, और सिर या ठोड़ी को जमीन से स्पर्श करते है।
- उसके पश्चात् दोनों हाथों को परस्पर नितम्बों से पीछे लेकर आपस में पकड़ते है। यही आसन की पूर्णता है।
- आसन से वापस आने के लिए धीरे – धीरे हाथों को खोलते है, तथा पूरक करते हुए सिर या ठोड़ी को ऊपर उठाते है।

सावधानियॉ –

- कमर में किसी भी प्रकार का दर्द हो तो आसन का अभ्यास बिल्कुल न करें।
- जब तक कमर में पूर्णतः लचीलापन न हो अभ्यास न करें।
- हार्निया रोग से पीड़ित व्यक्ति को इसका अभ्यास न करें।
- अर्थराठटिस या गठिया के रोगी को यह अभ्यास पूर्णतः वर्जित है।

लाभ –

- कूर्मासन के नियमित अभ्यास से पाचन तन्त्र पर सकारात्मक प्रभाव आता है।
- कब्ज एवं मधुमेह के रोग में भी लाभ पहुॅचता है।
- बर्हिमुखी व्यक्तित्व धीरे – धीरे स्वतः ही अर्न्तमुखी होने लगता है।
- जिन व्यक्तियों को बहुत ज्यादा गुस्सा आता है, उन लोगो को खास कर इसका अभ्यास करना चाहिए क्योंकि ये गुस्से को शान्त करता है।
- मन को नियन्त्रित करता है, तथा आत्म संयमित बनाता है।

8.3.5 – कुक्कुटासन :–

"यद्यासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
निवेश्य भूमौ संस्था वयोमस्थं कुक्कुटासनम्।।" – 1/23।।

अर्थात् पद्मासन लगाकर घुटनों और जंघाओं के बीच (अनुकूल स्थान पर) दोनों हाथों को डालकर हथेलियों को भूमि पर सुस्थिर कर (उसी के बल) शरीर को आकाश में स्थिर (पृथ्वी से ऊपर) रखने से कुक्कुटासन होता है।

नामकरण – कुक्कुटासन एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ होता है, मुर्गा। इस आसन में शरीरिक स्थिति मुर्गे के समान प्रतीत होती है, इसलिए इसे कुक्कुटासन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम किसी मैट के ऊपर पद्मासन लगाकर बैठते है। तत्पश्चात् दोनों हाथों को जाघों और पिण्डलियों के बीच से निकाल लेते है।
- दोनों हाथों को कोहनियों तक बाहर निकालते हुए दोनों हथेलियों को जमीन पर दृढ़ता से स्पर्श करते है।
- अब पूरक करते हुए शरीर को जमीन से कोहनियों तक ऊपर उठाते है, तथा आखों को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करते है।
- फिर धीरे – धीरे श्वास को छोड़ते हुए शरीर को नीचे लेकर आए।

- अभ्यास को दोहराने के लिए यही प्रक्रिया दोबारा करे।

सावधानियॉ –

- इस आसन को प्रारम्भ करने से पूर्व हथेलियों एवं कलाइयों को मजबूत करे, उसके बाद ही अभ्यास का प्रारम्भ करें। अन्यथा हानि हो सकती है।
- कुक्कुटासन करने से पूर्व शरीर के भार को कम करना भी आवश्यक है।
- जिन लोगो के पैरों में अधिक चर्बी होती है, वे लोग भी इस आसन को सरलता से नही कर सकते है। इसलिए पैरो की चर्बी को कम करें।
- जिसके हाथ या पैरों में अधिक बाल हो तो पहले उन बालों को साफ करे, उसके बाद ही अभ्यास करें, अन्यथा आसन करने पर बाल खिंच सकते है, जिससे वहॉ बहुत पीड़ा का अनुभव होता है।

लाभ –

- चंचल प्रवृति के लोगों के लिए यह आसन बहुत लाभकारी है। इससे उनके अन्दर स्थिरता का विकास होता है।
- इस आसन को करने से वक्ष प्रदेश का विकास होता है।
- फोजन सोल्डर, (कन्धों की जकड़न) तथा हृदय सम्बन्धित रोगों में लाभकारी है।
- इसको नियमित रूप से करने कलाइयॉ, तथा कन्धो में शक्ति आने लगती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न –

(1). निम्न में से हठप्रदीपिका में वर्णित आसन है।
(क) नटराज आसन (ख) वृश्चिकासन
(ग) शलभासन (घ) उत्तानकूर्मासन

(2). निम्न आसनो में से हठप्रदीपिका में वर्णित आसन नहीं है।
(क). सिद्धासन (ख). पद्मासन
(ग). वीरासन (घ). उष्ट्रासन

(3). कूर्मासन में शारीरिक स्थिति प्रतीत होती है।
(क). बन्दर के समान (ख). कुत्ते के समान
(ग). कछुए के समान (घ). कौए के समान

(4). स्वस्तिकासन को श्रेणी में रखा जाता है।
(क). शरीर सर्वधनात्मक (ख). ध्यानात्मक
(ग). विश्रान्तिकारक (घ). उक्त में से कोई नही

रिक्त स्थानो की पूर्ति करो –

(1). शवासन को ..... आसन की श्रेणी में रखा जाता है।
(2). हठप्रदीपिका में कुल ..... आसन है।
(3). आसनों को ..... श्रेणियो में बॉटा गया है।
(4). कुक्कुटासन में शरीरिक स्थिति ..... के समान प्रतीत होती है।

सत्य एवं असत्य को चिन्हित करें –

(1). हठप्रदीपिका के महत्वपूर्ण आसन पॉच है। (.....)
(2). हठ प्रदीपिका को कुल पॉच उपदेशों में विभाजित किया गया है। (.....)
(3). महर्षि घेरण्ड के द्वारा हठ प्रदीपिका की रचना की गयी है। (.....)

(4). आसनो के नियमित अभ्यास से शरीर एवं मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। (.....)

8.4 – सारांश –

प्रस्तुत इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित प्रारम्भ के पॉच आसनों का अध्ययन किया। जिसके अन्तर्गत आपने आसनो की विधियों के साथ – साथ लाभ एवं सावधानियों का भी अध्ययन किया। इन आसनो में दो ध्यानात्मक तथा तीन शरीर सर्वधनात्मक आसन है।

प्रिय विद्यार्थियों आसनो की विविध क्रियाविधि का अध्ययन करने के बाद आप इस बात से भली – भॉति अवगत हो चुके होंगे कि वर्तमान युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आसन कितने उपयोगी है। आसनो के नियमित अभ्यास से वे किसी प्रकार स्वयं को स्वस्थ्य रख दीर्घायु प्राप्त कर सकते है, तथा हठयोग के प्रमुख लक्ष्य यानि राजयोग की प्राप्ति कर सकते है। किन्तु किसी भी आसन को पुस्तक में पढ़कर न किया जाए तो बेहतर होगा। आसनो के प्रारम्भ में कुशल मार्ग दर्शन नितान्त आवश्यक है, तभी आसन लाभ प्रदान करते है।

पाठको इन आसनो का वर्णन आपको हठयोग के अन्य ग्रन्थों में भी मिलेगा, किन्तु संदेह की आवश्यकता नही हैं। बहुत से ऐसे आसन है, जिनका वर्णन हठयोग के अन्य ग्रन्थो में भी है। इसलिए प्रत्येक आसन की विधि को भली – भांति सीखकर ही अभ्यास को प्रारम्भ करें।

8.5 शब्दावली

- वेग – चाल
- स्वस्तिकासन – स्वस्तिक के समान शारीरिक स्थिति
- मनोरूप – मन के अनुसार
- प्राचीन – पुरानी
- स्पाइनल कोर्ड – रीढ़ की हड्डी
- कटि – कमर
- वाम – बाया
- अस्थमा – दमा
- स्पोण्डोलाइटिस – गर्दन तथा कन्धे में होने वाला रोग जिसमें हड्डियों का चिपचिपा पदार्थ समाप्त हो जाता है।
- उत्तेजना – गुस्सा या आवेश
- अग्रभाग – आगे का हिस्सा

8.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –

(1). (घ) (2). (घ) (3). (ग) (4). (ख)

रिक्त प्रश्नों के उत्तर –

(1). विश्रान्तिकारक (2). 15 (3). तीन (4). मुर्गे (cock)

सत्य एवं असत्य प्रश्नों के उत्तर –

(1). असत्य (2). सत्य (3). असत्य (4). सत्य

8.7– सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

4 स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति।
5 स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

8.8– निबन्धात्मक प्रश्न –

(1). कूर्मासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
(2). हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों की विवेचना कीजिए।

इकाई– 9 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ उत्तान कूर्मासन धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन ,मयूरासन

9.1 – प्रस्तावना
9.2 – उद्धेश्य
9.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ
9.3.1 – उत्तानकूर्मासन – विधि, सावधनियॉ, लाभ
9.3.2 – धनुरासन – विधि, सावधनियॉ, लाभ
9.3.3 – मत्स्येन्द्रासन – विधि, सावधनियॉ, लाभ
9.3.4 – पश्चिमोत्तानासन – विधि, सावधनियॉ, लाभ
9.3.5 – मयूरासन – विधि, सावधनियॉ, लाभ
9.4 – सारांश
9.5 – शब्दावली
9.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.8 – निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हठयोग प्रदीपिका में वर्णित स्वस्तिकासन ,गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन किया । प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित अगले पॉच आसनो का सम्यक अध्ययन करेगें

9.2 उद्धेश्य

- उत्तान कूर्मासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- धनुरासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- मत्स्येन्द्रासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- पश्चिमोत्तानासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- मयूरासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।

9.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ

जिज्ञासु विद्यार्थियों पूर्वोक्त इकाईयों में आपने आसन के अर्थ, परिभाषा, उद्धेश्य तथा प्रथम पॉच आसनों को पढ़ा, उनके प्रत्येक तथ्य जैसे नामकरण, विधि (पारम्परिक) तथा वर्तमान विधि, लाभ, सावधानी इत्यादि का विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्ययन के पश्चात् आप इतना भली – भांति जान चुके होगे कि यदि आसन को सावधानी पूर्वक न किया जाये तो उसकी बहुत हानियॉ भी होती है।

प्रस्तुत इकाई में आप मध्य के पॉच आसनों से परिचित हो सकेंगे। इन आसनों में भी आपको प्रत्येक बिन्दुओं को पढ़ने का अवसर मिल रहा है। इसलिए आप एकाग्रचित्त हो प्रत्येक आसन को पढ़ने एवं समझने का प्रयास करें।

9.3.1– उत्तानकूर्मासन –

कुक्कुटासनबन्धस्थों दोर्भ्या सम्बध्य कन्धराम्।
शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम्।। 1/24।।

अर्थात् कुक्कुटासन लगाकर दोनों हाथों से गले को पकड़कर कछुए के समान चित्त लेट जाना, इसे उत्तानकुर्मासन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम अच्छा सा पद्मासन लगा कर कमर, गर्दन को सीधे करते हुए बैठते है।
- तत्पश्चात् दोनों हाथों को पिण्डलियों तथा जाघों के मध्य से बाहर करते है कि कोहनियॉ भी पिण्डलियों से बाहर आ जाए।
- अब दोनों हाथों को कन्धों को अच्छी तरह स्पर्श करते है।
- अन्ततः कन्धों केा स्पर्श करते हुए पीठ के बल लेट जाते है।
- यही वर्तमान में उत्तानकूर्मासन की विधि बतायी जाती है।

सावधनियॉ –

- उत्तानकूर्मासन थोड़े कठिन आसनों की श्रेणी में आता है, इसलिए शरीर जब पूरी तरह लचीला हो तभी अभ्यास करना चाहिए।
- पैर बहुत अधिक मोटे नहीं होने चाहिए।
- हाथ व पैरों में यदि बाल हो तो साफ कर लेने चाहिए।

- हाथों में यदि दर्द हो तब भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- सरल आसनों में पूर्णता आने पर ही इस आसन को प्रारम्भ करना चाहिए।
- पुस्तकों इत्यादि में पढ़कर आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- इस आसन को करने से मन में एकाग्रता का विकास होता है।
- हाथों में शक्ति विकसित होती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से देखे तो मूलाधार चकं का जागरण होता है। जिससे कुण्डलिनी शक्ति में भी जाग्रत होने की सम्भावना रहती है।
- वक्ष प्रदेश का विकास होता हैं फेफड़ों के रोगों में भी लाभकारी है।
- बर्हिमुखी व्यक्तित्व या चंचल व्यक्तियों का इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए क्योंकि यह मन को शान्त करता है।

9.3.2– धनुरासन –

पादाङ्.गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्यात् धनुरासनमुच्येत।।1/25।।

अर्थात् पेट के बल लेट कर दोनों पावों के अंगूठों को दोनों हाथों से पकड़कर (पीठ की ओर) उन्हें कानों तक खींचकर धनुष के समान आकार दे, यह धनुरासन कहलाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम पेट के बल जमीन पर सीधे लेट जाते है, तथा दोनों हाथों को सीधे करके जघांओ के पास रखते है।
- तत्पश्चात् ठोड़ी को जमीन से स्पर्श करते हुए दोनों हाथों को छाती के दाएं एवं बाए तरफ रखते है।
- अब दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ते हुए नितम्बों की ओर लाते है, तथा दोनों हाथों से अंगूठों को पकड़ लेते है।
- फिर धीरे – धीरे पैर को पीठ की तरफ मोड़ते हुए कानों तक लाते है, तथा कोहनियों से हाथों को आगे कर तरफ से सीधा करते है।
- वापस आने के लिए धीरे – धीरे हाथों को घुमाते हुए पैरों को नीचे रखते है, तथा गर्दन की नीचे रखते है।
- फिर कुछ देर आंखे बन्द कर विश्राम करते है।
- दोबारा करने के लिए पुनः यही प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करते है।

नामकरण –: धनुर अर्थात् धनुष। इस आसन को करते समय शारीरिक स्थिति धनुष के समान हो जाती है। इसलिए इस आसन को धनुरासन कहते है।

सावधनियॉ –:

- यह आसन कठिन आसनों की श्रेणी में आता है। इसलिए पहले सरल आसनों में दक्षता प्राप्त करने के बाद ही कठिन आसनों की तरफ बढ़ना चाहिए।
- गर्भवती माताओं को भी यह आसन नहीं करना चाहिए।

- जिन लोगों को आपरेशन कराये दो या तीन महीने हुए हो उन्हें भी यह अभ्यास वर्जित है।
- ऐसे कठिन अभ्यासों को पुस्तकों में पढ़कर तो बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए।
- मासिक धर्म के दौरान भी अभ्यास को निषेध माना जाता है।
- अल्सरेटिव कोलाइटिस में भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
- हार्निया के रोग में भी यह अभ्यास वर्जित है।

लाभ –:

- इसके नियमित अभ्यास से मेरूदण्ड में लचीलापन बड़ता है तथा मेरूदण्ड में बढ़ा हुआ कड़ापन दूर होता है।
- वक्ष प्रदेश का विकास होता है, तथा वक्ष के रोग दूर होते है।
- जो भी अभ्यासी आसन में शरीर को आगे तथा पीछे की ओर लुढ़काता है तो पाचन प्रक्रिया पूर्ण रूप व्यवस्थित होने लगती है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से पेट में वायु सम्बन्धित रोगों में लाभ होता है।
- मधुमेह तथा मासिक धर्म की अनिमितताओं में भी लाभकारी अभ्यास है।
- गुरू के निर्देशन में सोल्डर तथा सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस में भी कराया जा सकता है।
- मेरूदण्ड में रक्त का संचार कर उन्हें स्वस्थ बनाता है।
- पेट तथा उसके ओर जमी चर्बी को हटाता है तथा साइटिका रोग में भी लाभ पहुँचाता है।

9.3.3 – मत्स्येन्द्रासन –:

वमोरूमूलार्पित दक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम्।
प्रगृह्य तिष्ठेत् परिवर्तिताङ्.गः श्रीमत्स्यनाथोदितमासनस्थात्।। 1/26।।

अर्थात् दाहिने पॉव को बायी जंघा के मूल में रखकर और बाएँ पॉव को (दाहिने) घुटने के बाहर से घेरते हुए शरीर को ऐंइन देकर मोड़े। तब विपरीत हाथों से दोनों पावों को पकड़कर स्थिर रहना चाहिए। यह श्री मत्स्येद्रनाथ का कहा हुआ आसन है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- दोनों पैरो को सीधा करते हुए दोनों हाथों से जमीन को स्पर्श करते हुए दण्डासन की अवस्था में बैठते है।
- अब बाए पैर को दाहिने घुटने के नीचे से निकालते हुए दाए नितम्ब के बाहर स्थिर करते है, तथा दायं पैर को घुटने से मोड़ते हुए बाए घुटने के पास पंजे को स्थापित करते है।
- तत्पश्चात् बाए हाथ को दाये घुटने के बाहर से घूमाकर पंजे को पकड़ते है।
- उसके बाद दाये हाथ को मोड़ते हुए सिर को भी दायी तरफ मोड़ते है, तथा आखें बन्द करते है।
- इसी अभ्यास को दूसरी तरफ से करने के लिए यही प्रक्रिया को दोबारा दोहराते है।

नामकरण –: हठयोग की परम्परा के महान योगी मत्स्येन्द्रनाथ जी हमेशा इसी आसन में साधना किया करते थें उन्हीं के नाम के आधार पर ही इस आसन का नाम मत्स्येन्द्रासन कहा जाता है।

सावधनियॉ –:

- पेप्टिक अल्सर तथा हर्निया के रोगी को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिन भी व्यक्तियो को थायराइड की समस्या है उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
- हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति को भी यह आसन नही करना चाहिए।
- मासिकधर्म के दौरान भी अभ्यास को निषेध माना गया हैं
- गर्भवती स्त्रियों को भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिन व्यक्तियों की शल्य चिकित्सा हुयी हो उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ –:

- जिन व्यक्तियों को मधुमेह रोग हो जाता है, अर्थात् इन्सुलिन का स्त्राण बन्द हो जाए तो इस आसन का नियमित अभ्यास करने से रोग में आराम मिलता हैं।
- पाचन संस्थान को स्वस्थ बनाता है, तथा पाचन से सभी स्त्रावों का नियमन करता हैं।
- कमर दर्द को भी दूर करने में सहायक है।
- पीलिया के रोग में यह अभ्यास उपयुक्त माना गया है।
- मेरूदण्ड को लचीलापन प्रदान कर समस्त जकड़न को दूर करता है।
- इस आसन को करने से वृक्कों की क्रियाशीलता बड़ती है, तथा मूत्राशय सम्बन्धी रोग भी दूर होते है।
- स्लिपडिस्क इत्यादि हो जाने पर उचित निर्देशन में किया जा सकता है।

9.3.4 – पश्चिमोतानासन –:

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दौभ्या पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा।
जानूपरिन्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः।। 1/28।।

अर्थात् दोनों पावों को भूमि पर दण्ड के समान फैला कर हाथों से दोनों अंगूठों को पकड़कर घुटनों पर मस्तक लगाकर रखने से पश्चिमोतान आसन कहलाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने के ओर सीधे फैलाते है, तथा हाथों को जंघाओं के दायी तथा बांयी ओर रखते हुए सीधे बैठते है।
- उसके बाद श्वास को अन्दर भरते हुए दोनों हाथों को कानो से स्पर्श करते हुए सीधा करते है।
- तत्पश्चात् श्वास को बाहर निकालते हुए धीरे कमर को आगे की ओर इतना झुकाते है कि माथा घुटनो से स्पर्श करने लगे उसी समय दोनों हाथों से पैरों के अंगूठे को पकड़ लेते है।
- हाथ व सिर का स्पर्श होना चाहिए कि कोहनियॉ भी जमीन से स्पर्श कर जाए।

- इसी आसन को वर्तमान में पश्चिमोतान आसन कहा जाता है।
- वापस आते समय धीरे – धीरे हाथों को ढीला छोड़े श्वास को लेते हुए दोनो हाथों को ऊपर करे तथा श्वास छोड़ते हुए दोनो हाथों को नितम्ब के पीछे रखकर शरीर को ढीला छोड़ दें। आखों को बन्द कर विश्राम करे।
- दोबारा करने क लिए यही प्रक्रिया को दोहराए।

नामकरण –: पश्चिमोत्तान अर्थात् पीछे के भाग को खींचना। इस आसन को करते समय पश्च भाग को आगे की ओर तानते है इसलिए इस आसन को पश्चिमोतान आसन कहते है।

सावधानियॉ –:

- आसन को प्रारम्भ करते समय अभ्यास को सहजता पूर्वक करना चाहिए।
- कमर दर्द, स्लीप डिस्क, सर्वाइकल तथा माइग्रेन के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप से ग्रसित तथा हृदय रागियों को भी इसका अभ्यास नही करना चाहिए।
- हार्निया तथा आपरेशन (छः माह के अन्दर) वाले व्यक्तियों को भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- शुरूवाती दिनों में आसन जितना लगता है उसी पर रूकना चाहिए तथा धीरे – धीरे अभ्यास की पूर्णता तक जाना चाहिए।
- यह थोड़े कठिन आसनों की श्रेणी में आता है तो उचित मार्गदर्शन में ही अभ्यास करना चाहिए।
- सोल्डर स्पोण्डोलाइटिस होने पर भी अभ्यास को रोक देना चाहिए।

लाभ –:

- पेट तथा पेट के आस – पास की चब्री को कम कर, पेट को निश्चित आकार प्रदान करता है।
- नियमित रूप से इस आसन को करने से मेरूदण्ड में लचीलापन बना रहता है, तथा मेरूदण्ड सम्बन्धित रोग नहीं होते।
- बच्चो के पेट में जो कृमि होते है, उन्हें नष्ट करने में लाभकारी है।
- पाचन प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है।
- ऐसा भी कहा जाता है जो लोग इसका नियमित अभ्यास करते है, उनका शरीर फूल की पंखुड़ियों की भांति कोमल रहता है, तथा चेहरे पर तेज बना रहता है।
- पैरों की मांशपेशियों को भी लचीला बनाता है।

9.3.5 – मयूरासन –:

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः।
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठम्।। 1/30।।

अर्थात् दोनों हाथों को भूमि पर अच्छी तरह स्थापित कर और दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों ओर लगाकर दण्ड के समान अधर में उठने को मयूर आसन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम कम्बल या दरी को बिछाकर वज्रासन में बैठेगे।
- तत्पश्चात् आखों को सहजता से बन्द कर धीरे – धीरे श्वास पूरक एवं रेचक करते हुए शरीर को स्वस्थ बनाते है।
- अब दोनों पैरों को पीछे से सीधा करते हुए दण्डासन की अवस्था में आते है।
- अब दोनों कोहनियों को नाभि के दायी एवं बायी ओर स्थिर करते हुए धीरे – धीरे शरीर को ऊपर उठाते हुए दोनों पैरों को बिल्कुल सीधा करते है।
- पैरों को सीधा करने के बाद नजरो के किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करते है, तथा थोड़ी देर आसन को स्थिर करते है।
- अभ्यास को दोहराने के लिए यही प्रक्रिया को दोबारा करते है।
- वापस आने के लिए धीरे – धीरे दोनों पैरों को नीचे लाते है और आंखे बन्द कर वज्रासन या दण्डासन में विश्राम करते है।

सावधनियॉ –:

- हार्निया के रोग मे यह आसन नहीं करना चाहिए।
- बहुत ज्यादा कमजोर व्यक्तियो को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिस भी व्यक्ति को इसका अभ्यास करना हो, तो अभ्यास के प्रारम्भ से आगे तकिए का प्रयोग कर आसन करे, अन्यथा चोट लग सकती है।
- ये थोड़ा कठिन सन्तुलन का अभ्यास है, इसलिए पहले सन्तुलन के सरल अभ्यास में पूर्णता प्राप्त कर ले, फिर इसे शुरू करे।
- माताओं (लड़कियों) बहनों को इस आसन को करने का निषेध बताया है।
- अल्सर के रोगियो को भी यह अभ्यास नहीं करन चाहिए।

लाभ –:

- ऐसा कहा जाता है कि जो भी व्यक्ति इस आसन को सिद्ध कर लेता है उसे विष का भी कोई असर नहीं होता।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती हैं
- प्रतिदिन आसन को करने से मुखमण्डल दिव्य आभा से युक्त होने लगता हैं
- मन की एकाग्रता बढ़ने लगती है।
- हाथों की मांसपेशियॉ मजबूत एवं सुडौल होने लगती है।
- शरीर सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करता है।

अभ्यास प्रश्न–

1. किस आसन को करने से शारीरिक स्थिति कछुए के समान हो जाती है।
2. किसी एक ध्यानात्मक आसन का नाम लिखिए।
3. मधुमेय के रोगियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी कौन सा आसन है।
4. हार्नियॉ रोग का सम्बन्ध आहार नाल के किस भाग से है।

9.4 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों वर्तमान में हठयोग के ग्रन्थों को पढ़ा जा रहा है, परन्तु प्रस्तुत इकाई में आप हठयोग के महत्तवपूर्ण ग्रन्थ हठप्रदीपिका के आसनों का अध्ययन कर रहे है। जिन्होने

मात्र 15 आसनो का ही वर्णन किया है। परन्तु आप सभी को प्रत्येक इकाइयों में 5–5 करके प्रत्येक आसनों से आसनों का विवरण दिया जा रहा है।

9.5 शब्दावली

- वेग – चाल
- मनोरूप – मन के अनुसार
- प्राचीन – पुरानी
- कटि – कमर
- उत्तेजना – गुस्सा या आवेश
- अग्रभाग – आगे का हिस्सा
- पूरक – श्वास लेना
- रेचक – श्वास छोडना
- कुम्भक–श्वास रोकना
- माइग्रेन–सर दर्द

9.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.कूर्मासन 2. पदमासन 3.मत्स्येन्द्रासन 4.ऑत (छोटी ऑत)

9.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6 स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति।
7 स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

9.8 – निबंधात्मक प्रश्न

(1) पदमासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
(2) पश्चिमोतान आसन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?

इकाई – 10 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ शवासन, सिद्धासन , पद्मासन , सिंहासन, भद्रासन

10.1 – प्रस्तावना
10.2 – उद्धेश्य
10.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ
10.3.1 – शवासन – विधि, सावधानियॉ व लाभ
10.3.2 – सिद्धासन – विधि, सावधानियॉ व लाभ
10.3.3 – पद्मासन – विधि, सावधानियॉ व लाभ
10.3.4 – सिंहासन – विधि, सावधानियॉ व लाभ
10.3.5 – भद्रासन – विधि, सावधानियॉ व लाभ
10.4 – सारांश
10.5 – शब्दावली
10.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.8 – निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हठयोग प्रदीपिका में वर्णित उत्तान कूर्मासन धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन का सम्यक अध्ययन करेगें।

10.2 उद्धेश्य

- प्रस्तुत इकाई में आप हठयोग की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- हठयोग के अन्य ग्रन्थों में भी आप इन आसनों का अध्ययन कर सकेंगे।
- घेरण्ड संहिता में आप इन आसनो का विस्तृत रूप से विवरण प्राप्त कर सकेंगे।
- आसनों से प्राप्त होने वाले अनेकानेक लाभों से लाभान्वित हो सकेंगे।
- घेरण्ड संहिता तथा हठ प्रदीपिका में आसनों की विधि में अन्तर जान सकेंगे।

10.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ

जिज्ञासु विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका के अन्तिम पॉच आसनों का अध्ययन करेंगें सामान्यतः हठप्रदीपिका में प्रथम, मध्यम तथा अधम कोटि में आसनों को वर्गीकृत नहीं किया गया है, किन्तु ये 15 आसनो का वर्णन तीन इकाइयों में किया गया है। इसीलिए आपको समझाने मात्र के माध्यम से (अन्तिम शब्द) ये शब्द (प्रथम, द्वितीय माध्यम) का प्रयोग किया जा रहा है। ये पॉच आसनों में एक विश्रामात्मक, तीन ध्यानात्मक तथा एक शरीर संवर्धानात्मक आसन है। प्रिय विद्यार्थियों जिनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है –

10.3.1 – शवासन –: हठप्रदीपिका के अनुसार विधि –:

उत्तानं शववद्भूमौ शयनं तच्छवासनम्।
शवासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।।1/32।।

अर्थात् भूमि पर शव के समान चित्त लेट जाना शवासन है। शवासन थकान को मिटाता है, और मानसिक शान्ति प्रदान करता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम किसी मैट या चटाई इत्यादि के ऊपर पीठ के बल चित्त होकर सहजता पूर्वक लेट जाते है।
- अब दोनों हाथों तथा दोनों पैरों को शरीर से थोड़ी दूरी पर रखते है, जिसमें हथेलियॉ जमीन से स्पर्श करती हुयी आसमान की तरफ अधखुली अवस्था में रहती है, तथा पैरों में एड़िया अन्दर और पंजे बाहर की ओर खुले रहते है।
- धीरे – धीरे आंखो को सहजता से बन्द करते है, तथा अपनी एकाग्रता श्वासों पर केन्द्रित करते है।
- तत्पश्चात् एकाग्रता श्वासों से हटाकर धीरे – धीरे शरीर पर लाते है, और अनुभव करते है कि शरीर पूरी तरह शान्त हो रहा है।

- अन्ततः वापस आने के लिए धीरे – धीरे पुनः लम्बी गहरी श्वास लेते है, तथा शरीर को हिलाते हैं। दोनों हथेलियों आपस में रगड़कर आखों पर लगाते है, धीरे – धीरे आंखे खोल देते है।

नामकरण –: शव अर्थात् dead या मृत आसन अवस्था या स्थिति । इस आसन में शारीरिक स्थिति मृत शरीर के समान प्रतीत होती है, इसलिए इसे शवासन कहा जाता है।

सावधानियॉ –:

- शवासन को करते समय ये ध्यान रखना आवश्यक है कि इस आसन को भी अकेले नहीं करना चाहिए। क्योंकि कई बार आसन करते – करते साधक बहुत अन्दर चला जाता है।
- इस आसन में सोना नहीं चाहिए, केवल विश्राम करना चाहिए।
- शरीर पर किसी भी प्रकार का तनाव नहीं लेना चाहिए।

लाभ –:

- हृदय रोग तथा उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति को इसका अभ्यास दो या तीन बार करना चाहिए।
- तन्त्रिका तन्त्र को स्वस्थ बना कर, तनाव तथा अनिद्रा इत्यादि रोगों को दूर करता है।
- उत्तेजना बढ़ जाने पर भी इस आसन को करने से शरीर एवं मन शान्त होता है।
- मधुमेह एवं तन्त्रिका तन्त्र से सम्बन्धित रोगों में भी इसके सकारात्मक प्रभाव आते है।

10.3.2 – सिद्धासन –:

योनिस्थानकङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वां दृढ़ं विन्यसेत्
मेद्रे पादमथकमैव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरम्
ह्मेतन्मोक्षकपातभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।।1/35।।

अर्थात् एक पॉव की एड़ी को सीवनी में अच्छी तरह लगाकर और दूसरे पॉव को शिश्न के ऊपर दृढ़ता से रखें, चिबुक को हृदय प्रदेश पर अच्छी तरह स्थापित कर, इन्द्रिय को संयमित कर तथा भ्रूमध्य दृष्टि होकर निश्चल रहना चाहिए। मोक्ष द्वार का भेदन करने वाला अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला यह सिद्धासन कहलाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम पैरों को सीधा रखते हुए दोनों हाथों को जंघा के दाएं एवं बायी तरफ रखते है।
- तत्पश्चात् बाये पैर को घुटने से मोड़ते हुए एड़ी को योनि के मध्य स्थापित करते है।
- उसके बाद दाये पैर को घुटने से मोड़ बाएं टखने पर इस प्रकार रखते है कि दोनों एड़ियां एक दूसरे के ऊपर रहे।
- तत्पश्चात् दोनों पैरों की अंगुलियों को दोनों जंघाओं और पिण्डलियों में इस प्रकार फिक्स करते है कि दोनो अंगूठे थोड़े बाहर को दिखायी दे।

- वर्तमान में यही सिद्धासन कहा जाता हैं।

नामकरण –इस आसन को करने से सिद्धी प्राप्त होती है साधक की समाधि शीघ्र लगती है इसलिए इस आसन का नाम सिद्धासन रखा गया।

सावधानियॉ –:

- जिन लोगो के पैर में दर्द हो उन्हें इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- साइटिका रोग से ग्रसित व्यक्तियो को भी सिद्धासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में दर्द होने पर भी इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- पैर में सूजन हो या खुली चोट में भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- सिद्धासन शुरू करने से पूर्व सूक्ष्म अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

लाभ –:

- इस आसन को नियमित रूप से करने पर रीढ़ की हड्डी सीधी रहती हैं।
- सिद्धासन का अभ्यास रक्तचाप को सन्तुलित रखता है।
- इस अभ्यास को नियमित करने पर मन नियन्त्रित होने लगता है।
- महिलाओं के लिए आवश्यक है, श्वेत प्रदर सम्बन्धित परेशानियों को दूर करता है।

10.3.3 – पद्मासन –:

वमोरूपारि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
छक्षोरूपरि, पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढ़म्।
अङ्.गुष्ठौ, हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्
एतद्त्याधिविनशकारि यमिनां पद्यासनं प्रोच्यते।।1/44।।

अर्थात् बायी जंघा के ऊपर दाहिना पॉव तथा दाहिनी जंघा के ऊपर बांया पॉव स्थापित कर, दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर दाहिने हाथ से दांये अंगूठे को तथा बांये हाथ से बांये अंगूठे को दृढ़ता से पकड़कर, पश्चात् हृदय प्रदेश पर ठुड्डी को लगाकर नासाग्रदृष्टि रखने से पद्मासन होता है। योगियों के द्वारा कथित यह पद्मासन सभी रोगो को नष्ट करने वाला होता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम दोनो पैरों को सीधा करते हुए दण्डासन में बैठते है
- तत्पश्चात् दांए हाथ से बाए पैर को ऊपर उठाकर दायी जंघा पर रखते है।
- उसके बाद बाए हाथ से दाए पैर के ऊपर उठाकर बायी जंघा पर रखते है।
- अब दोनों हाथ ध्यान मुद्रा में रखते हुए घुटने पर रखते है, तथा आंखे सहजता से बन्द करते है।
- वर्तमान विधि के अनुसार यही पद्मासन हैं।

विशेष –: हठप्रदीपिका में जिस पद्मासन का वर्णन किया है, उसे वर्तमान में बद्ध पद्मासन के नाम से जाना जाता है।

नामकरण –: पदम एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है कमल। इस आसन में शारीरिक स्थिति कमल के फूल के समान प्रतीत होती है, इसलिए इसे पद्मासन के नाम से जाना जाता है।

सावधानियॉ –:

- जब तक पैर पूरे तरह लचीले न हो तब तक पद्मासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। पैरो को लचीला बनाने के लिए पूर्ण तितली आसन का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए।
- जो लोग साइटिका के रोग से ग्रसित होते है उनके लिए आसन वर्जित है।
- घुटने के दर्द से पीड़ित व्यक्ति को यह अभ्यास बिल्कुल नहीं करना चाहिए।
- रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में दर्द हो तब भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –:

- इस आसन के नियमित अभ्यास से मन में एकाग्रता का विकास होता है।
- पद्मासन का नियमित रूप से अभ्यास करने पर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से उच्च रक्तचाप भी घटने लगता है।
- ध्यान के लिए अच्छा अभ्यास माना गया है इसके नियमित अभ्यास से धारणा की प्रक्रिया बढ़ जाती है। धारणा की पूर्णता ही ध्यान की आरम्भावस्था होती है।

10.3.4 – सिंहासन –:

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।।1/50।।

अर्थात् दोनों एड़ी अण्डकोष के नीचे सीवनी के दोनों और बांयी एड़ी को दक्षिण पार्श्व में, तथा दांयी एड़ी को वाम पार्श्व में लगायें।

हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत् नासाग्रं तु समाहितः।।1/51।।

(और तब) दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर सभी अंगुलियों को फैलाये, मुख को चौड़ा खेलकर गासाग्रदृष्टि रखते हुए अच्छी प्रकार स्थिर रहें।

सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिपुङ्गवैः।
बन्धत्रितयसंधानं कुरूते चासनोत्तमम्।।1/52।।

अर्थात् श्रेष्ठ योगियों द्वारा पूजित यह सिंहासन कहलाता है। आसनों में उत्तम यह आसन तीन बन्धों को सरल बनाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम दोनों घुटनों को मोड़ते हुए बज्रासन में बैठते है।
- तत्पश्चात् दोनों घुटनों में 40 से 45 सेमी0 की दूरी बनाते है।
- अब दोनों हथेलियों को जमीन से स्पर्श कराते हुए दोनों पैरों क मध्य रखते है, तथा इससे अंगुलियां शरीर की ओर रहे।
- इसके बाद गर्दन को थोड़ा ऊपर करते है मानो छत को देख रहे हो और दृष्टि को भूमध्य पर केन्द्रित करते है।

- अब लम्बा गहरा पूरक करते है तथा रेचक सिंह (lion) के समान गर्जते हुए करते है तथा जीभ बाहर निकालते है।
- उसके बाद जीह्वा को अन्दर कर पुनः करते है और इस प्रक्रिया को दोहराते है।
- वर्तमान में यही विधि सिंहासन की करायी जा रही है।

नामकरण –: सिंह, शेर को संस्कृत भाषा में कहा जाता है। इस आसन में सिंह के समान गर्जना होती है, इसलिए इसे सिंहासन कहा जाता है।

सावधानियॉ –:

- जो भी लोग वात रोग से ग्रसित हो उन्हे इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस आसन को बज्रासन में बैठकर किया जाता है। जो घुटने में दर्द को बड़ा सकता है।
- यदि गले का आपरेशन हुआ हो तो उन्हें भी यह अभ्यास वर्जित है।
- बर्हिमुखी व्यक्तित्व के व्यक्ति को भी ये अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –:

- जिन लोगों में बोलने से परेशानी होती है या जो लोग हकलाते या तुतलाते हो उनको यह आसन नियमित रूप से करने पर लाभ मिलता है।
- सिंहासन का नियमित अभ्यास स्वर को मधुर बनाता है।
- अर्न्तमुखी व्यक्तित्व के लोगों का सिंहासन जरूर करना चाहिए जिससे उनका व्यक्तित्व का विकास हो सके।
- जो लोग बचपन से ही सिंहासन का अभ्यास करते है उन्हें गले सम्बन्धी रोग जैसे टांसिलाटिस, आवाज का मोटा होना या स्वर भारी होना आदि समस्याऍ नही होती है।

10.3.5 – भद्रासन –:

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पाश्र्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।। 1/53।।
पार्श्वपादौ व पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम्।
गोरक्षसनमित्याहुरिंद वै सिद्धयोगिनः।1/54।।

अर्थात् दोनों एड़ियों को अण्डकोष के नीचे सीवनी के पार्श्व में रखें। बायी एड़ी को सीवनी के वाम भाग में तथा दायीं एड़ी को सीवनी के दाहिने भाग में रखकर दोनों पावों के अग्रभाग को अच्छी प्रकार से पकड़कर स्थिर रहें। यही सभी व्याधियों को नाश करने वाला भद्रासन है। सिद्ध योगी इसी को गोरक्षासन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम कमर गर्दन को सीधा रखते हुए दोनों पैरो को सीधे करके बैठते है।
- अब बाये पैर को घुटने से मोड़ते हुए सीवनी के पास रखते है, तथा दांए पैर को भी मोड़ते हुए सीवनी के पास रखते है।
- अब दोनों तलवों को आपस में मिलाते हुए दोनों हाथो से लॉक करते है।
- कमर गर्दन बिल्कुल सीधी रखते हुए आंखों को बन्द करते है।

नोट –: प्रिय विद्यार्थियों घेरण्ड संहिता में गोरक्षासन की दो विधियां बतायी गयी है जिनमें से एक हठप्रदीपिका से मिलती है और एक अन्य है। हठप्रदीपिका में इसे गोरक्षासन भी कहा गया है।

सावधानियॉ –:

- इस आसन को नियमित रूप से करने पर आध्यात्मिक उन्नति होती है।
- यह एक ध्यानात्मक आसन है जो ध्यान के लिए उत्तम माना गया है।
- मन को शान्त करने के लिए इस आसन को अवश्य करना चाहिए।
- इस आसन को यहि बज्रासन वाली विधि से किया जाए तो जठराग्नि को भी प्रदीप्त करता हैं।

लाभः–

- सामान्यतः इस आसन को सभी लोग कर सकते है परन्तु जिन लोगों को घुटने में सूजन या दर्द हो उन्हें यह अभ्यास नही करना चाहिए।
- पुस्तको से पढ़कर अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- यह थोड़ा कठिन ध्यानात्मक आसन है इसलिए शुरू में सरल ध्यानात्मक आसन से ही करने चाहिए।
- साइटिका रोग से पीड़ित व्यक्ति को इसका अभ्यास नही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न –:

- **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) शवासन को किस श्रेणी में रखा गया है।
(ख) सिद्धासन आसन की किस श्रेणी में आता हैं।
(ग) सिंहासन का अर्थ है।

- **बहुविकल्पीय प्रश्न–**

(क) सिंहासन का सर्वाधिक लाभ उक्त में ज्यादा आता है।
(अ) थायराइड (ब) मधुमेह
(स) अल्सर (द) उच्च रक्तचाप
(ख) पदम से आशय है –
(अ) कमल से (ब) बेला से
(स) गेंदा से (द) उक्त में कुछ नहीं
(ग) उक्त में से ध्यानात्मक आसन है –
(अ) सिंहासन (ब) पद्मासन
(स) सर्वांगाासन (द) उक्त में कोई नहीं
(घ) उक्त में से शरीर संबर्धानात्मक आसन है –
(अ) पद्मासन (ब) सिंहासन
(स) भद्रासन (द) सिद्धासन

10.4 – सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने शवासन, सिद्धासन, पदमासन, सिंहासन तथा भद्रासन की क्रियाविधि लाभ व सावधानियों का अध्ययन किया। शारीरिक के साथ–साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य की

दृष्टि से ,सिद्धासन, पदमासन तथा भद्रासन बेहद महत्वपूर्ण है।शवासन को विश्रान्तिकारक आसनों की श्रेणी में रखा है। विविध आसनों को करने के बाद शवासन में आराम जरूर करना चाहिए।

10.5 – शब्दावली

- शवासन – मृत शरीर के समान शारीरिक स्थिति
- पद्मासन – कमल के समान शारीरिक स्थिति
- सिंहासन – शेर के समान शारीरिक स्थिति
- विश्रान्ति– आराम
- पार्श्व–बगल
- पूरक–श्वास लेना
- रेचक–श्वास छोडना
- प्रदीप्त–जलाना

10.6– अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

एक शब्द में उत्तर दीजिए –

क–विश्रान्तिकारक आसन **ख**–ध्यानात्मक आसन **ग**–सिंह अर्थात् शेर के समान

बहुविकल्पीय प्रश्न–

क–अ ख–अ ग–ब घ–ब

10.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति।
9. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

10.8– निबन्धात्मक प्रश्न

(1) पद्मासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
(2) शवासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
(3) निम्न आसनों के लाभ व सावधानियों पर एक टिप्पणी लिखिए।
क–भद्रासन ख–सिंहासन

इकाई– 11 प्राणायाम – अर्थ, परिभाषा, उद्धेश्य, प्राणायामो का वर्गीकरण

11.1 – प्रस्तावना
11.2 – उद्धेश्य
11.3 – प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषायें
11.4 – प्राणायामों का वर्गीकरण
11.5 – सारॉश
11.6 – शब्दावली
11.7 – अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

11.8 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.9 – निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन प्रायः मनुष्य एवं ब्रह्ममाण्ड दोनों ही विषयो पर अपनी खोज करता रहता हैं, कि मनुष्य को ब्रह्ममाण्ड में चलने वाली ऐसी कौन सी शक्ति है। जो प्रत्येक कार्य को करने की सामर्थ्य उसके अन्दर जाग्रत करती है। वह शक्ति यदि उसमें विद्यमान है तो उसके जीवित होने का संकेत देती है और यदि नही होती तो उसको मृत मान लिया जाता।

इन दोनों विषयों पर विशेष चिन्तन के बाद एक शब्द प्रस्फुटित होता है, वह हैं ''प्राण''। प्राण एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य एवं ब्रह्ममाण्ड दोनों का ही संचालन करती है। प्राण तत्व जब सम्पूर्ण शरीर में विस्तृत होने लगता है तब उसे प्राणायाम की संज्ञा दी जाती है।

जिज्ञासु पाठको प्रस्तुत इकाई में आप प्राणायाम के अर्थ, परिभाषा एवं उसके प्रकारो का अध्ययन कर सकेंगे।

11.2 – उद्धेश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- प्राणायाम के अर्थ को भलीभॉति समझ सकेंगे।
- विभिन्न परिभाषाओ के द्वारा प्राणायाम को जान सकेंगे।
- प्राणायामों के प्रकारो का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्राणायामों के उद्धेश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का विश्लेषण कर सकेंगे।

11.3 – प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषायें

प्राणायाम शब्द का शाब्दिक विश्लेषण कर उसकी उत्पत्ति की जाए तो दो शब्द प्रतीत होते है – प्राण + आयाम। प्राण अर्थात् ऊर्जा, शक्ति, सूक्ष्म ध्वनि तथा आयाम अर्थात् विस्तारित होना, लम्बायमान होना। मनुष्य के शरीर में प्रत्येक क्रिया को पूरित करने की शक्ति जिस तत्व से आती है वही प्राणायाम है। प्राणायाम वायु को अन्दर लेने और बाहर निकालने की क्रिया मात्र नही है अपितु ये तो वायु का वह शुद्ध सात्विक एवं पवित्र अंश है, जिससे प्रत्येक प्राणी का जीवन निर्भर है। जिस तरह स्थूल शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न प्रकार की साग सब्जियां, फल इत्यादि का सेवन करते है, तभी वह स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार आत्म शरीर या सूक्ष्म शरीर को बनाए रखने के लिए जिस तत्व की आवश्यकता होती है, वह प्राण है। जिसको शरीर में विस्तारित करने के बाद प्राण शब्द को प्राणायाम नामक संज्ञा से सुसज्जित किया जाता है।

- प्राणायाम को परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि कहते है –

''तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'' – 2/49

अर्थात् उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति का रूक जाना प्राणायाम है। इस परिभाषा में महर्षि पतंजलि कहना चाहते है कि यदि प्राण तत्व को शरीर में विस्तारित करना है, तो सर्वप्रथम आसन की सिद्धि करने का प्रयास करे, और जब साधक का आसन सिद्धि हो जाए तत्पश्चात् श्वास और प्रश्वास पर एकाग्र होकर प्राणायाम

का अभ्यास करें। जिस तरह स्थूल शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए आसन का अभ्यास उपयुक्त है, ठीक उसी प्रकार मन को संयमित करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास नितान्त आवश्यक है।

- जाबालदर्शनोपनिषद में प्रणायाम की तीनो विधियो को बताया गया है – ''रेचक, कुम्भक, पूरक इन तीनो के द्वारा जो प्राण सन्तुलित होता है, वही प्राणायाम है।

''जबालदर्शनोपनिषद'' में प्राणायाम की तीन विधियां बतायी गयी है। जिसमें पूरक शब्द से आशय वायु के शुद्ध तत्व अर्थात् प्राण को अन्दर लेने से है। रेचक शब्द का अर्थ नकारात्मक या अशुद्ध वायु को बाहर निकालने से है, तथा जब इन दोनो क्रियाये अपनी जगह स्थिर कर दिया जाए तो यही कुम्भक के नाम से जाना जाता है। वैसे तो प्राणायाम के सम्बन्ध में अनेकानेक परिभाषाए है किन्तु यदि तेजबिन्दु उपनिषद पर दृष्टिपात करे तो यह परिभाषा प्रस्तुत होती है।

- ''सभी प्रकार की वृत्तियो का निरोध करना ही प्राणायाम है।''

अर्थात्, जब विचारों के आने जाने के प्रकिया अपनी जगह स्थिर हो जाए तो वही प्राणायाम है। ऐसा तेज बिन्दु उपनिषद कहता है।

- सिद्धि सिद्धान्त पद्धति के अनुसार– ''प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता।।

– (सिद्धि सिद्धान्त पद्धति)

अर्थात् शरीर की नाडियों में प्रयास पूर्वक प्राण के प्रभाव को रोकना ही प्राणायाम कहलाता है।

- पंच शिखोपनिषद में प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है–
  ''तपो न परं प्राणायामात् तत्वों विशुद्धिमल्न आदीप्तिश्च ज्ञानस्य।।''

– (पंचशिखोपनिषद)

अर्थात् प्राणायाम से बढकर कोई तप नहीं प्राणायाम से अन्तः काल के दोष दूर हो जाते है और ज्ञान की दीप्ति में वृद्धि हो जाती है। अतः योगी को बढे यत्न के साथ प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम के सम्बन्ध में मनुमहाराज ने निम्नलिखित विवेचन किया–

- ''दहान्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
  तथेन्द्रियाणां दहान्ते दोषः प्राशस्य निग्रहात।।

– (6/71 मनु)

अर्थात् जैसे अग्नि आदि में तपाने से सुर्वण आदि धातुओं के मल विकार नष्ट हो जाते है वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जातें है।

स्वात्माराम जी कृत हठ प्रदीपिका में प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा है–

- ''चले वात चलं चित्तं निश्चलें निश्चलं भवेत्।''

– (2/2 हठप्रदीपिका)

अर्थात् प्राण एव मन का घनिष्ट सम्बन्ध है। वायु के चलाय मान होने पर चित्त भी चंचल होता और वायु के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है।

- पं0 श्री राम शर्मा आचार्य जी प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहते है – कि प्राण शक्ति चेतना विद्युत है जो मस्तिष्क के प्रत्येक कोश को प्रभावित करती है एवं प्रक्रिया सही होने पर सौद्धेश्य ध्यान के जुड़ जाने पर न केवल विकारों का

शमन करती है अपितु, प्रखरता समृद्धि आदि को भी बढ़ाती है, और मनुष्य को क्षमता सम्पन्न बनाती है।

- शिवानन्द जी के अनुसार – ''प्राणायाम वह माध्यम है, जिसके द्वारा योगी अपने छोटे से छोटे शरीर में ब्रह्ममाण्ड के जीवन के अनुभव करता है।''

– (प्राणायाम विज्ञान)

- ''प्राणायाम वह महाविद्या है, यह समृद्धि स्वतन्त्रता और वरदान का राजमार्ग है।'' – योग चूड़ामणि

11.4 – प्राणायामों का वर्गीकरण

प्रिय विद्यार्थियों अब तक आप प्राणायाम के अर्थ एवं परिभाषाओं को भलीभॉति समझ चुके होगे कि प्राणायाम प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कितना लाभदायक होता है। अभी तक आप उसके अर्थ एवं परिभाषा को ही जाना है। अब आप के मन में प्रश्न उठ रहें होगे कि प्राणायाम के कितने प्रकार है और प्रत्येक प्राणायाम किस तरह से लाभ पहुॅचते है तथा हठग्रन्थो में किस तरह से प्राणायाम को वर्गीकृत किया है।

हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने अपने अध्याय – 5 प्राणायाम प्रकरण में ''सप्तांग या सप्त साधन'' का वर्णन किया है। प्राणायाम भी उनमें से एक महत्तपूर्ण साधन या अंग है। जिसको करने से शरीर में लघुता या हल्कापन आता है। जो किसी भी योग साधक के लिए नितान्त आवश्यक है। महर्षि घेरण्ड प्राणायामो का वर्णन करते हुए कहते है –

''सहितः सूर्यभेदश्य उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः।।''

– 5/46 घेरण्ड संहिता

अर्थ प्राणायाम के आठ भेद हैं – सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली।

जिज्ञासु विद्यार्थिया अब तक आपने हठ योग के एक ग्रन्थ के अनुसार प्राणायामो के प्रकारो को जाना जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है। जिससे आप प्राणायामो को भलीभॉति समझ सकेंगे।

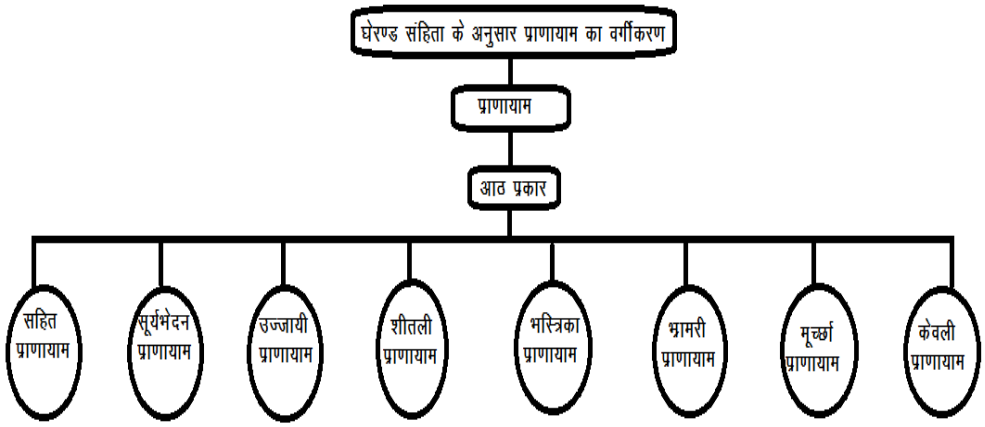

1. **सहित प्राणायाम** – सहित प्राणायाम को करने की दो विधियॉ वतायी गयी है। प्रथम विधि है, सगर्भ और द्वितीय विधि है, निगर्भ।

(अ). सगर्भ प्राणायाम – सगर्भ में ''अ उ और म'' के माध्यम से ब्रह्मा, कृष्ण और शिव पर ध्यान किया जाता है। जिसे सामान्यतः बीज मन्त्र के कहा जाता है। अर्थात् सगर्भ प्राणायाम को बीज मन्त्रों की सहायता से किया जाता है।

(ब). निगर्भ प्राणायाम – निगर्भ प्राणायाम में बीज मन्त्र का प्रयोग नही किया जाता है। इसमें प्राणायाम को गिनती के साथ किया जाता है। जिनको तीन श्रेणियो में विभाजित किया गया है। उत्तम, मध्यम और अधम। इस विधि के अनुसार प्राणायाम को करने की विधि का उत्तम अनुपात 1:4:2 माना जाता है।

2. **सूर्यभेदन प्राणायाम** – सूर्यभेदन प्राणायाम में दांयी नासिका से पूरक (श्वास को अन्दर लेना) किया जाता है। तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध (ठुड्डी को कंठ कूप से लगाना) लगाकर कुम्भक (श्वास को रोक कर रखना) किया जाता है, तथा पुनः दांयी नासिका से ही रेचक (श्वास को बाहर छोड़ना) कर दिया जाता है।
3. **उज्जायी प्राणायाम** – उज्जायी प्राणायाम से दोनों नासिका से पूरक क्रिया होती है। पूरक की क्रिया के साथ ही छोटे बच्चो के खर्राटे के सर्दश ध्वनि उत्पन्न होती है। इसके बाद श्वास को अन्तरंग कुम्भक से जालन्धर बन्ध के साथ रोका जाता है, तथा पुनः धीरे – धीरे श्वास का रेचक (बाहर) किया जाता है।
4. **शीतली प्राणायाम** – शीतली प्राणायाम का वर्णन महर्षि घेरण्ड ने कुछ अन्य विधि से किया, जैसा कि प्रत्येक प्राणायाम में केवल नासिका का प्रयोग हो रहा था। शीतली प्राणायाम में मुख एवं नासिका दोनो का प्रयोग बताया गया है। जीभ को बाहर निकाल कर परनाले के सदृश बनाए। तत्पश्चात् मुख से पूरक करे, (श्वास को अन्दर लेना) (जैसे जल को गटका जाता है ठीक उसी तरह) फिर कुछ क्षण श्वास को अन्दर राक ले तथा धीरे – धीरे श्वास को बाहर निकाल दें।
5. **भस्त्रिका प्राणायाम** – श्वसन की तीव्र गति से पूरक और रेचक की प्रक्रिया घेरण्ड संहिता में भस्त्रिका प्राणायाम कहा गया है। इसमें समान अन्तर से श्वास को अन्दर और बाहर लय के साथ किया जाता है। अन्य ग्रन्थो में पूरक और रेचक के बाद कुम्भक का प्रयोग बताया गया है।
6. **भ्रामरी प्राणायाम** – घरेण्ड संहिता में भ्रामरी प्राणायाम की दो विधियों का वर्णन किया गया है। विधि इस प्रकार है –

प्रथम विधि – ध्यान के किसी भी आसन जैसे पद्मासन, सिद्धासन, सिद्धयोनी आसन इत्यादि में बैठते है, तत्पश्चात् कोहनियों को मोड़ते हुए दोनो हाथ की तर्जनी या मध्यमा अंगुली से दोनो कानो को बन्द करते है फिर जबड़ो को ढीला छोड़ते है, जिससे कम्पन स्पष्ट सुनायी दे। अब श्वास को नासिका को नाक से भीतर भरते है, फिर धीरे – धीरे भ्रमर की गुजंन की ध्वनि के साथ रेचक करते है।

द्वितीय विधि – भ्रामरी प्राणायाम की द्वितीय विधि मे ध्यानात्मक आसन में बैठते है। तत्पश्चात् दोनों हाथो के अंगूठों से कान बन्द करते है, जिससे बाहर की कोई भी कोई भी ध्वनि सुनायी न दे फिर तर्जनी अगुलियां माथे पर, मध्यमा और अनामिका अगुलियां आंखो पर तथा शेष छोटी अगुलियां नाक के दाएं एवं वायी तरफ रहती है। उसके बाद श्वास को अन्दर भरते है, तथा रेचक के दौरान ऊॅ का उच्चारण या भ्रमर का जैसा गुजांर होता है। जिससे मस्तिष्क स्वतः ही शान्त और स्थिर होने लगता है।

7. **मूर्च्छा प्राणायाम** – ध्यान के किसी आसन में बैठते है। शरीर को स्थिर एवं मन को शान्त करते है। तत्पश्चात् श्वास को अन्दर भरते हुए आंखो को सहजता से बन्द करते है। अब सिर को धीरे – धीरे ऊपर की और लगभग 45 – 50 अंश के कोण तक उठाते है। याद रहे सिर को उठाते समय धीरे – धीरे आंखो को खोलते है, और साम्भवी दृष्टि के साथ कुम्भक लगाते है, तथा घुटनो पर कोहनियो को सीधा रखते है रोके, फिर धीरे वापस आए और आंखे बन्द कर देते है।
8. **केवली प्राणायाम –** केवली प्राणायाम का वर्णन महर्षि घेरण्ड ने सबसे अन्त में किया है। सामान्यतः इस प्राणायाम में अजपाजप किया जाता है। अजपाजप अर्थात् स्वतः होने वाला। इस प्राणायाम में जब पूरक क्रिया की जाती है, उस समय साधक अनुभव करता है कि प्राणवायु मूलाधार से ऊपर होती हुयी हृदयद्वार से गुजकर नासिका तक पहुॅचती है, तथा रेचक के दौरान अनुभव किया जाता है, कि प्राणवायु नासिका के अग्रभाग से नीचे की ओर जा रही है। यही केवली प्राणायाम की सामान्य विधि है।

प्राणायाम का वर्गीकृत रूप महर्षि पतंजलि के प्रमुख ग्रन्थ योग सूत्र में भी है जो इस प्रकार से है –

प्राण के आयाम अर्थात् विस्तार को प्राणायाम कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के निम्न प्रकार बताए गये है –

''बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।।''

– पा0 यो0 सू0 2/50

अर्थात् बाह्यावृत्ति, आभ्यान्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति होता है, तथा वह देश, काल और संख्या द्वारा भली – भॉति देखा जाता हुआ लम्बा और हल्का होता जाता है।

1. **बाह्यावृत्ति प्राणायाम** – प्राणवायु को शरीर से बाहर निकाल कर जितनी देर रोक सके रोक ले, यही बाह्यावृत्ति प्राणायाम है। इसे रेचक क्रिया के नाम से भी जाना जाता है।
2. **आभ्यान्तरवृत्ति प्राणायाम –** प्राणवायु नियन्त्रित गति से धीरे – धीरे अन्दर ले जाना और जितनी देर सम्भव हो सके रोक लेना, आभ्यान्तरवृत्ति प्राणायाम कहलाता है। इसे पूरक क्रिया के नाम से भी जाना जाता है।
3. **स्तम्भवृत्ति प्राणायाम –** सामान्यतः श्वसन की जो गति है, उसे प्रयत्न या जबरदस्ती बाहर निकालने या अन्दर ले जाने के अभ्यास न करते हुए श्वसन प्रक्रिया को उसी जगह रोक देना जहॉ वह है, स्तम्भवृत्ति प्राणायाम कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने तीन प्राणायामों के अतिरिक्त एक ओर प्राणायाम का वर्णन किया है जो निम्नलिखित है –

''बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।।''

– पा0 यो0 सू0 2/51

अर्थात् बाहर ओर भीतर के विषयो का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला चतुर्थ प्राणायाम है। योग के अनेकानेक ग्रन्थो में प्राणायाम का वर्णन किया गया है।

हठप्रदीपिका के अनुसार –

हठप्रदीपिका हठयोग का प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें प्राणायाम का वर्णन निम्न रूपों में किया गया है –

''सूर्यभेदनमुज्जायी सीतकारी शीतली तथा

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।''

– 2/44 हठ प्रदीपिका

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लावनी ये आठ प्रकार के कुम्भक होते है। स्वात्माराम सूरी जी ने हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक की संज्ञा दी है –

अगली इकाइयों में हम इन प्राणायामों की विस्तार पूर्वक चर्चा करेगें।

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

1. घेरण्ड संहिता में प्राणायामों की संख्या ..... है।
2. सहित प्राणायाम की ..... विधि है।
3. महर्षि पतंजलि ने ..... प्रकार के प्राणायामो का वर्णन योग सूत्र में किया है।
4. जबालदर्शनोपनिषद के अनुसार प्राणायाम की ..... विधियो को बताया गया है।
5. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। ये परिभाषा का वर्णन ..... में किया गया है।

सत्य और असत्य का चिहिन्न लगाएं –

1. प्राणायाम के नियमित अभ्यास से शरीर की शक्ति बडने लगती है। (.....)
2. शीतली प्राणायाम को करने से शरीर में ऊर्जा बड़ने से गर्मी का आभास होता है। (.....)
3. शीतली प्राणायाम को करने का निर्देश जाड़ो में दिया जाता है। (.....)
4. हृदय रोगी को कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। (.....)
5. बाहयवृत्ति, आभ्यान्तरवृत्ति, स्तम्भवृत्ति प्राणायाम का वर्णन घेरण्ड संहिता में किया गया है। (.....)

बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) घेरण्ड संहिता के सप्तांग में प्राणायाम का स्थान है।

(अ) प्रथम (ब) पंचम

(स) द्वितीय (द) चतुर्थ

(ख) चलें वाते चलं चित्तं का वर्णन हठ योग के किन ग्रन्थों में है।

(अ) घेरण्ड संहिता (ब) हठप्रदीपिका

(स) शिव संहिता (द) गोरक्षसंहिता

(ग) थायराइड के रोगी के लिए सबसे उपयुक्त प्राणायाम है।

(अ) सूर्यभेदी (ब) नाड़ीशोधन

(स) उज्जायी (द) कपालभांति

(घ) प्राणायाम का अर्थ है।

(अ) प्राण को रोक देना (ब) जल्दी – जल्दी श्वास लेना

(स) जोर से श्वास अन्दर लेना (द) प्राण का विस्तार करना

11.5 – सारॉश

विद्याार्थियो आप प्राणायाम के अर्थ, परिभाषा एवं वर्गीकरण को पढ़ने के बाद समझ चुके होगें कि प्राणायाम का अभ्यास प्रत्येक मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। जिस तरह स्थूल शरीर का भोजन सब्जियॉ, फल, अनाज है, ठीक उसी तरह सूक्ष्म शरीर का भोजन

प्राण है। जिसकी पूर्ति सिर्फ प्राणायाम को करने से पूरी हो जाती है। प्राणायाम को करने से शरीर, मन एवं इन्द्रियां तीनो पर विजय प्राप्त की जा सकती है। परन्तु ये सब साधक के अभ्यास, निरन्तरता और विश्वास पर निर्भर करता है। प्राणायाम के अभ्यास से एक ओर जहॉ मनुष्य की आयु बड़ने लगती है, तो वही दूसरी ओर शरीर के विभिन्न रोग स्वतः ही दूर होने लगते है। प्राणायाम सम्पूर्ण रोगो को दूर करने की एक सर्वोत्तम औषधी है, इसलिए पंचशिखोपनिषद में कहा गया है –

''तपो न परं प्राणायामात् तत्पों विशुद्धिमल्न आदीप्तिश्च ज्ञानस्या।''

– पंचशिखोपनिषद

अर्थात् प्राणायाम से बड़कर तप नही, प्राणायाम से अन्तः काल के दोष दूर हो जाते है, और ज्ञान की दीप्ति में वृद्धि हो जाती है। अतः योगी को बड़े यत्न के साथ प्राणायाम का अभ्यास करनाा चाहिए।

11.6 – शब्दावली

- संकेत – निर्देश
- प्रस्फुटित – बाहर निकलना
- सात्विक – शुद्ध, पवित्र
- मूर्च्छा – बेहोशी
- कुम्भक– श्वास रोकना,हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक भी कहा गया है।
- यत्न– प्रयास

11.7 – अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

रिक्त प्रश्नों के उत्तर :–

1. आठ 2. दो 3. चार 4. तीन 5. पतंजलि योग सूत्र

सत्य एवं असत्य प्रश्नों के उत्तर :–

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. असत्य

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर :–

क. ब ख. ब ग. स घ. द

11.8 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
4. बाबा रामदेव – प्राणायाम रहस्य।
5. महर्षि घेरण्ड–घेरण्ड संहिता बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

11.9 – निबन्धात्मक प्रश्न

(1). प्राण शब्द के अर्थ करते हुए प्राणायाम को परिभाषित कीजिए।

(2). घेरण्ड संहिता में वर्णित आठ प्राणायामों में से किसी दो विधियों का वर्णन करें।

इकाई – 12 प्राणायाम के सिद्धान्त प्राणायाम की उपयोगिता

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्धेश्य
12.3 प्राणायाम के सिद्धान्त
12.3.1 श्वसन प्रक्रिया
12.3.2 अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान
12.3.3 प्राणायाम का समय
12.3.4 क्रम
12.3.5 वस्त्रो का चयन
12.3.6 आहार का महत्व

12.3.7 स्नान का समय
12.3.8 बैठने का आसन
12.3.9 तनाव से बचना
12.3.10 धूम्रपान का पूर्णतः निषेध
12.3.11 प्राणायाम की सीमाएँ
12.3.12 पेट का खाली होना
12.4 प्राणायाम की उपयोगिता
12.4.1 प्राणायाम द्वारा मन की एकाग्रता
12.4.2 नाड़ियो का शुद्धिकरण
12.4.3 मानसिक लाभ
12.4.4 शारीरिक लाभ
12.4.5 पाचन शक्ति का बढ़ना
12.4.6 वृद्धावस्था न आना
12.4.7 आध्यात्मिक लाभ
12.4.8 मृत्यु के भय का निराकरण
12.4.9 कुण्डिलिनी जागरण
12.4.10 राजयोग की प्राप्ति
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 – प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति ऋषि संस्कृति के नाम से जानी जाती है। प्राणयाम एक वैदिक कालीन परम्परा के रूप में हमारे वहॉ चला आ रहा है। पूर्व काल में ऋषि सत्तऍ ही इसका अभ्यास किया करती थी। उन्होने इस जीवनी शक्ति को स्थूल रूप में श्वास से सम्बन्ध माना है। उनका कहना है कि संसार का प्रत्येक प्राणी श्वास लेता है। प्राण के माध्यम से ही उसके शरीर में उसके शरीर में प्राण एवं जीवन का संचार होता है।

इसलिए ऋषियों ने श्वासो का सम्बन्ध जीवनी शक्ति से माना है। उनका मन्त्र है कि प्राणायाम के अभ्यास द्वारा जीवनी शक्ति पर नियन्त्रण प्राप्त करके शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है, और इसे बचाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में महर्षि घेरण्ड कहते है –

''अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य सिद्धिधिम्।
यस्य साधन मात्रेण देवतुल्योः भवेन्नरः।।'' – 5/1।।

अर्थात् कि मैं प्राणायाम की विधि बतलाता हूँ। जिसका साधन मात्र करने से मनुष्य देवता के समान हो जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों पूर्व की इकाई में प्राणायाम के अर्थ एवं परिभाषाओं के पढ़ने के पश्चात् प्रस्तुत इकाई में आप प्राणायाम के सिद्धान्त एवं उपयोगिता को भलीभॉति समझ सकेंगे। पाठको स्मरण रहे प्राणायाम करने में सरल महसूस होते है किन्तु इनको करने में यदि थोड़ी सी भी असावधानी हो जाए तो इसके परिणाम बहुत ही नकारात्मक प्रभाव शरीर व मन पर पडते है।

12.2 उद्धेश्य

- प्राणायामो को करने से प्राप्त होने वाले लाभो को जान सकेंगे।
- प्राणायाम के सिद्धान्त से भलीभॉति अवगत हो सकेंगे।
- प्राणायाम के लिए उपयुक्त वातावरण का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राणायाम के अभ्यास काल को भलीभॉति जान सकेंगे।

12.3 प्राणायाम के सिद्धान्त

प्राणायाम के सम्बन्ध में अनेकानेक ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है, किन्तु उनमें से कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित है।

12.3.1 – श्वसन प्रकिया – प्राणायाम सिद्धान्त में प्रथम सिद्धान्त नासिका रन्ध्रो को साफ करने का है। साधक को प्राणायाम करते समय श्वसन प्रकिया को नासिका से लेना चाहिए। मुंह से श्वास नही लेना चाहिए। यद्यपि कुछ प्राणायाम में मुंह से श्वसन करने का निर्देश है किन्तु उन्हे करते समय उपयुक्त स्थान का चयन कर लेना चाहिए।

12.3.2 – अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान – प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व शान्त एवं स्वच्छ स्थान का होना नितान्त आवश्यक है। प्राणायाम को कभी भी अत्यधिक हवा और धूप में नहीं करना चाहिए। इसके अभ्यास के ऐसे कमरे का चुनाव करना चाहिए जो शीतल से मुक्त हो, उचित प्रकाश से युक्त हो, तथा कमरे में वायु के अवागमन और निष्कासन की पूरी सुविधा हो। कमरा धूल और गन्दगी से मुक्त होना चाहिए।

12.3.3 – प्राणायाम का समय – प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार प्राणायाम को करने का उपयुक्त समय प्रातः काल का माना गया है। सिर्फ भ्रामरी प्राणायाम को अर्द्ध रात्रि (आधी रात) वीत जाने के पश्चात् करने का नियम दिया गया है। प्राणायाम को प्रातः कालीन करने के विषय ये तथ्य माने जाते है कि भोर में प्राण वायु शुद्ध एवं पवित्र होती है, चित्त शान्त होता है, उस समय किया गया प्राणायाम प्रायः शुभ माना जाता है।

12.3.4 – क्रम – महर्षि घेरण्ड द्वारा रचित घेरण्ड संहिता पर दृष्टिपात करें तो प्राणायाम का अभ्यास प्रत्याहार के बाद और ध्यान से पहले करने की बात कही गयी है। महर्षि धेरण्ड कहते है कि साधक का इन्द्रियो पर नियन्त्रण हो जाये। उसके बाद ही प्राणायाम का अभ्यास शुरू करना चाहिए।

12.3.5 – वस्त्रो का चयन – प्राणायाम को करने के दौरान साधक को सदैव मौसम को ध्यान में रखकर वस्त्रों का चयन करना चाहिए। यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो, सूती वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए, और शीत ऋतु है तो ऊनी तथा ढीले वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

12.3.6 – आहार का महत्व – आहार को प्राणायाम में बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। अभ्यास प्रारम्भ करने के उपरान्त भोजन में सभी प्रकार के पौषक तत्व जैसे प्रेटीन

कार्बोहाइड्रेट, वसा, दुग्ध इत्यादि को लेना प्रारम्भ कर देना चाहिए। क्योकि प्राणायाम को उच्चावस्था तक ले जाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

12.3.7 – स्नान का समय – प्राणायाम का शुभारम्भ स्नानादि करके किया जाए तो उसके अच्छे परिणाम देखने को मिलते है। यदि साधक ऐसा करने में समर्थ नही है तो प्राणायामक रने के लगभग एक घंटे पश्चात् जब शरीर का तापमान सामान्यावस्था में आ जाए तब स्नान करना चाहिए।

12.3.8 – बैठने का आसन – अभ्यास को शुरू करते समय ध्यान का कोई भी आसन चुन लेना चाहिए, जैसे पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन इत्यादि। इन आसनो में बैठकर शरीरिक स्थिति तथा शान्त रहती है, साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी कम्बल आदि का प्रयोग प्राणायाम को करते अवश्य करें, जिससे साधक द्वारा ली जाने वाली ऊर्जा का क्षय न हो।

12.3.9 – तनाव से बचना – प्राणायाम के सभी अभ्यासों को करते समय यह भी याद रखना चाहिए कि प्राणायाम को जितनी मात्रा में बताया गया है, उतना ही करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक तथा जबरदस्ती कुम्भक (श्वास को रोकना) नहीं करना चाहिए। क्योंकि हमारे फेफड़े बहुत ही कोमल होते है। अनावश्यक दबाव देने से फेफड़ो के साथ साथ शरीर के अन्य अंगो में भी हानि हो सकती है। इसलिए अधिक तनाव ना लें।

12.3.10 – धूम्रपान का पूर्णतः निषेध – प्राणायाम के अभ्यासी को धूमपान का पूर्णतः निषेध बताया जाता है, क्योकि जितने अच्छे परिणाम धूमपान न करने वाले व्यक्ति आते है, उतने ही नकारात्मक परिणाम धूमपान करने वाले व्यक्तियो के आते है। इसलिए धूमपान से बचना चाहिए।

12.3.11 – प्राणायाम की सीमाएँ – सामान्यतः प्राणायाम का सभी व्यक्तियो को करने की सलाह दी जाती है। केवल जिन व्यक्ति की शल्य चिकित्सा की जाती है, उन्हें इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि वह ऐसा कोई भी अभ्यास न करे। जिससे प्राणायाम का प्रभाव नकारात्मक रूप में आए।

उदाहरण के लिए पेट की शल्य चिकित्सा के पश्चात् अग्निसार और कपालभॉति का अभ्यास नही करना चाहिए।

12.3.12 – पेट का खाली होना – प्राणायाम को प्रारम्भ करने से पूर्व इस बात का पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि पेट पूर्णतः खाली हो या भोजन किए हुए 4 से 5 घंटा हो चुका हो। यदि भरे हुए पेट में प्राणायाम का अभ्यास करते है तो फेफड़े और मध्यपट (डायफ्राम) पर दबाव पड़ता है। जिससे श्वसन प्रकिया लम्बी और गहरी नहीं हो पाती है।

12.4 – प्राणायाम की उपयोगिता

प्रिय पाठको अभी तक आप प्राणायाम के सिद्धान्तों को पढ़ रहें थे। इसके सिद्धान्तो को पढ़ने के बाद आप भलीभॉति समझ चुके होंगे कि हठ योग कि प्रत्येक क्रियाए मूल्य एवं सिद्धान्तो पर आधारित है। प्रस्तुत इकाई में अब आप प्राणायाम की उपयोगिता को जान सकेंगे, तथा उनसे मिलने वाले लाभ को प्राप्त कर सकेंगे। प्राणायाम की उपयोगिता या लाभ निम्नलिखित है –

12.4.1 – प्राणायाम द्वारा मन की एकाग्रता – मन व प्राण का अटूट सम्बन्ध है। मन सवार है, तो प्राण वाहन है। अतः मन के निरोध से प्राण का स्पन्दन रूक जाता है, और प्राण के

स्पन्दन की शिथिलता मन को एकाग्र बना देती है। इसलिए मन के निरोध के लिए प्राण स्पन्दन की गतिविधि पर सम्यक अनुशासन रखना नितान्त आवश्यक है।

12.4.2 – नाड़ियो का शुद्धिकरण – नाड़ियो की इन्द्रिय जगत् में नहीं देखा जा सकता है, लेकिन इनका हमारे शरीर में महत्वपूर्ण स्थान है। योग के आधार भूत ग्रन्थों के अनुसार शरीर में तीन नाड़ियॉ मुख्य मानी गयी है, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। प्राणायाम के द्वारा ये प्राण तत्व को ग्रहण करती है। नाड़ियों की शुद्धि होने पर बाहरी लक्षण देखे जा सकते है। जब शरीर दुबला और कान्तिवान हो जाता है तो ऐसा माना जाता है कि नाड़ियो का शुद्धिकरण हो चुका है। नाड़ियो की पूर्ण शुद्धि के बाद अर्न्तनाद सुनायी देने लगते है।

12.4.3 – मानसिक लाभ – प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य का समस्त वृत्तियो का नाश होना प्रारम्भ हो जाता है। मनुष्य इन वृत्तियो से मुक्त होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावनाओ को त्यागकर मानसिक लाभ प्राप्त करने लगता है। प्राणायाम का श्रद्धा तथा भाव पूर्वक नियमित अभ्यास करने से साधक का चित्त एकाग्र, शान्त स्थिर होने लगता है, तथा अवसाद, (डिप्रेशन) चिन्ता, कुण्डा, चिड़चिड़ापन, चंचलता, क्रोध आदि स्वतः ही नष्ट होने लगते है। मन पूरी तरह सन्तुलन की स्थिति में आने लगता है। मन की स्थिर स्थिति होने से उस अर्न्तजगत की शक्तियॉ (अर्थात् आन्तरिक ऊर्जा) जाग्रत होने लगती है, तथा उसकी बौद्धिक क्षमताओं का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। साधक की बुद्धि कुशाग्र होने लगती हैं। उसके समस्त मानसिक विकार नष्ट होने लगते है। अन्ततः साधक उच्चावस्था को प्राप्त करने लगता है।

12.4.4 – शारीरिक लाभ – प्राणायाम के अभ्यास से साधक मानसिक विकास के साथ – साथ अपने शरीर की समस्त बिमारियों का नाश करते हुए शारीरिक लाभ प्राप्त करता है। प्राणायाम के समय साधक त्रिबन्धों (मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध तथा जालन्धर बन्ध) का प्रयोग करता है। इसी के कारण कई ग्रन्थियां विशेष रूप से प्रभावित होता है। प्राणायाम को नियमित करने से असन्तुलित हार्मोन्स सन्तुलित होने प्रारम्भ हो जाते है। जो शरीर को लाभ पहुॅचते हुए शरीर के विकारों को नष्ट करता है।

12.4.5 – पाचन शक्ति का बढ़ना – नियमित रूप से प्राणायाम का अभ्यास करने वाले साधक की पाचन शक्ति बढ़ने लगती है।

12.4.6 – वृद्धावस्था न आना – प्राणायाम के अभ्यासी साधक को वृद्धावस्था छू नही पाती। जब वह अपान वायु को ऊपर खींचते तथा प्राण को कण्ठ के नीचे लाते है तो साधक वृद्धावस्था से मुक्ति पाकर सोलह वर्ष की आयु का लगने लगता है। अर्थात् बुड़ापा तो व्यक्ति को आता है किन्तु बुड़ापे के लक्षण नहीं आते। जैसे – शरीर में कम्पन, कमजोरी, कमर का झुक जाना, आंखो का कमजोर होना इत्यादि। वह अपने सभी कार्य स्वयं करने में समर्थ होता है।

12.4.7 – आध्यात्मिक लाभ – प्राणायाम एक ऐसी साधना है, इसका जितना अभ्यास किया जाए उतनी ही बढ़ती जाती है। जब कोई भी साधक इसका निरन्तर अभ्यास करता है तो उसकी साधना उच्चावस्था को प्राप्त होने लगती है। साधक की देह दिव्य तथा निर्मल प्रतीत होने लगती है। जब साधक प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त करता है, तो प्राण का प्रभाव सुषुम्ना नाड़ी से प्रवाहित होने लगता है, और वह उच्चावस्था को प्राप्त होने लगता है। साधक में नई कान्ति एवं आभा का उदय होने लगता है, तथा वह आलौकिक शक्तियो का दर्शन करने में समर्थ हो जाता है।

12.4.8 – मृत्यु के भय का निराकरण – कुछ विद्वानो के अनुसार प्राणायाम से अशुद्धियां दूर होती है। इसलिए उन्होने प्रणायाम को बहुत सम्मानजनक स्थान दिया है। ब्रह्म और अन्य देवतागण भी प्राणायाम का अभ्यास करते है, जिससे मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि जब तक योगी श्वास को शरीर में रोकता है। उस समय उसका मन विचार शून्य होने लगता है। विचारशून्य स्थिति जब किसी साधक की हो जाए तो वह कैसे किसी विषय पर सोच सकता है। इसलिए कहा जाता है कि उसे मृत्यु से भय नही लगता या मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

12.4.9 – कुण्डिलिनी जागरण – कुण्डिलिनी शक्ति ऐसी शक्ति होती है, जिसे सिर्फ योगी ही भलीभॉति समझ सकते है। यह प्रत्येक मनुष्य के शरीर में सुप्तावस्था में स्थिर होती है। इसके जाग्रत होते ही सामान्य मनुष्य महामानव बन जाता है। किन्तु ये भौतिक शरीर में प्रतीत नही होती, यह तो अतीन्द्रिय शक्ति है। इसे एक उच्चावस्था का योगी ही महसूस कर सकता है। इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्राणायाम एक अच्छा माध्यम है, जिससे यह जाग्रत हो सकती है।

12.4.10 – राजयोग की प्राप्ति – हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक कहा गया है। कुम्भक के द्वारा प्राण को रोकने से मन सभी वृत्तियो से मुक्त होता है।इसलिए प्राणायाम के अभ्यास द्वारा स्थिति प्राप्त होती है। मनु स्मृति में कहा गया है –

''देहयन्ते ध्याय मासांना धातुना हि यथा मलाः।
त्योन्द्रिप्राणा दहन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्।। – मनु स्मृति

अर्थात् जैसे अग्नि से तपाये स्वर्ण, रजत आदि धातुओं के मल जल जाते है। वैसे ही प्राणायाम के अनुष्ठान से इन्द्रियो में आ गये दोष ही दूर नहीं होते प्रत्युत प्राण, देह तथा मन के विकार भी दूर होकर इन पर वशित्व प्राप्त हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1.सत्य/असत्य कथन की पहचान करें –

(क) प्राणायाम को करने से शरीर की ऊर्जा घटने लगती है।
(ख) प्राणायाम सिर्फ रोगियो के लिए ही आवश्यक है।
(ग) प्राणायाम के नियमित अभ्यास से श्वसन दर घटने लगती है।
(घ) कभी – कभी प्राणायाम से लाभ अधिक मिलते है।
(ड.) अधिक कसे हुए वस्त्रों के साथ ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।
(च) शान्त वातावरण में प्राणायाम अधिक प्रभावशाली होता है।
(छ) प्राणायाम के दौरान धूम्रपान नहीं करना चाहिए।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क). श्वास को बाहर या अन्दर रोकने की प्रक्रिया को ..... कहते है।
(ख). प्राणायाम का अभ्यास ..... पर बैठकर करना चाहिए।
(ग). श्वसन प्रायः दीर्घ तथा ..... होना चाहिए।
(घ). प्राणायाम के नियमित अभ्यास से चित्त ..... एवं ..... होने लगता है।
(ड़). प्राणायाम के अभ्यास से साधक की देह ..... युक्त हो जाती है।
(च). ..... प्राणायाम में पूर्णतः वर्जित माना गया है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क). प्राणायाम के लिए उपयुक्त स्थान है –
(अ) तेज हवा में।

(ब) दुर्गन्ध युक्त।
(स) तेज धूप में।
(द) शान्त, स्वच्छ एवं हवादार कक्ष मे।

(ख). प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से –
(अ) शारीरिक ऊर्जा का क्षय होता है।
(ब) फेफड़ो की क्षमता घटती है।
(स) पाचन तन्त्र में ज्यादा लाभ पहुॅचाता है।
(द) शरीर एवं मन ऊर्जा से पूरित रहता है।

(ग). इनमें से प्राणायाम का सिद्धान्त है –
(अ) कुण्डिलिनी जागरण।
(ब) मृत्यु के भय का निवारण।
(स) धुम्रपान का पूर्णतः निषेध।
(द) नाड़ियों का शुद्धिकरण।

(घ). उक्त में से प्राणायाम का लाभ है –
(अ) श्वसन प्रक्रिया।
(ब) बैठने का आसन।
(स) नाड़ियों का शुद्धिकरण।
(द) स्नान का समय।

12.5 – सारांश

विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में आपने प्राणायाम के सिद्धान्त एवं उपयोगिताओ का अध्ययन किया। आपने जाना कि प्राणायाम को करते समय सामान्यतः कितने नियम व सिद्धान्त होते है जिनका पालन करना नितान्त आवश्यक होता है। इस इकाई में आपने सिद्धान्त के साथ इसकी उपयोगिताओ को भी भलीभॉति जाना। इनके अध्ययन के पश्चात् आप प्राणायाम के लाभ भी जान चुके होंगे। प्राणायाम सभी मनुष्यो के लिए आवश्यक है। प्राणायाम के नियम अभ्यास से शरीर एवं मन दोनो ही स्वस्थ रहते है। आज के व्यस्त जीवन शैली में जो नितान्त आवश्यक है।

12.6 – शब्दावली

- स्थूल – बड़ा
- अत्यधिक – बहुत अधिक
- नासिका रन्ध्र – नाक के छिद्र
- जीवनी शक्ति – प्राण या जीवन देने वाली ऊर्जा
- निष्काषन – बाहर जाने देना या निकलने देना
- हानि – नुकसान
- पूरक – श्वास को अन्दर ग्रहण करना
- कुम्भक – श्वास को अन्दर या बाहर रोक देना
- रेचक – श्वास को बाहर निकाल देना

- अर्द्धरात्रि – आधी रात
- इन्द्रियां – आंख, नाक, कान इत्यादि
- उच्चावस्था – ऊँची अवस्था
- ग्रीष्म ऋतु – गर्मी का मौसम
- अर्न्तनाद – अन्दर की ध्वनि

12.7 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सत्य/असत्य कथन

(क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) सत्य (ड) असत्य (च) सत्य (छ) सत्य

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क) कुम्भक (ख) कम्बल या चटाई (ग) गहरा
(घ) शान्त एवं निर्मल (ड) कान्ति (च) धूमपान

3. बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) द (ख) द (ग) स (घ) स

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति ।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

12.9 – निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राणायाम की उपयोगिता एवं सिद्धान्तो की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।